वर्ष-4, अंक 31, मार्च 2016

ISSN 2320-0359

युद्धरत आम आदमी

वंचितों का मासिक आर्थिक-सामाजिक दस्तावेज़ी साहित्य

150

सहयोग राशि 20 ₹

इस अंक में

रोज केरकेट्टा, वैन्नेत्लुआंगा, सूरजपाल चौहान, रमेश ऋतंभर

बानी बसु, ग्वेंडोलीन-एलिजाबेथ ब्रुक्स

महेन्द्र नारायण पंकज, राहुल राजेश, अशोक सिंह

विद्यालाल, सुमित्रा महरौल, अरुणाभ सौरभ, विज्ञानव्रत

सीताराम शर्मा, धनंजय प्रसाद, इन्द्रदेव शर्मा

मुकुल रंजन, सुरेश कुमार निराला

मजीद अहमद, शैलेन्द्र कुमार शुक्ल

युद्धरत आम आदमी

१५०

वंचितों का मासिक आर्थिक-सामाजिक दस्तावेज़ी साहित्य

वर्ष-4, अंक-31, मार्च-2016

संपादक
रमणिका गुप्ता

कार्यकारी संपादक
पंकज चौधरी

प्रबंधक
दिनेश कुमार

लेआउट डिजाइन और कवर पेज : ***नीरू***

लेआउट ***बर्नर्ड हेम्ब्रम***

अप्रैल, 2016 से पत्रिका की सहयोग राशि

साधारण अंक 1 प्रति	:	30/-
वार्षिक (साधारण डाक)	:	350/- व्यक्तिगत
दो वर्ष (साधारण डाक)	:	700/- व्यक्तिगत
संस्थाओं के लिए (वार्षिक)	:	600/-
संस्थाओं के लिए (दो वर्षीय)	:	1200/-
आजीवन व्यक्तिगत	:	10,000/-
संस्थाओं के लिए आजीवन	:	15,000/-

नोट : पत्रिका के फरवरी, 2016 तक बने सदस्यों के सदस्यता शुल्क में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। सभी राशि युद्धरत आम आदमी, दिल्ली के नाम से भेजें। दिल्ली से बाहर के चैक भेजते समय बैंक कमीशन के 50/- अतिरिक्त जोड़ दें।

प्रकाशन एवं संपादकीय कार्यालय
युद्धरत आम आदमी
द्वारा : रमणिका फाउंडेशन

1516 पहली मंजिल, वजीर नगर, कोटला मुबारकपुर, नई दिल्ली-03

कार्यालय : दूरभाष. : 011-46577704, मो. : 09910744984

ई-मेल : yuddhrataamaadmi@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक एवं संपादक : रमणिका गुप्ता,

मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स, बी-25, DSIDC कॉम्प्लेक्स, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110032

संपादक का आवासीय पता :
ए-221, ग्राउंड फ्लोर, डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली-110024

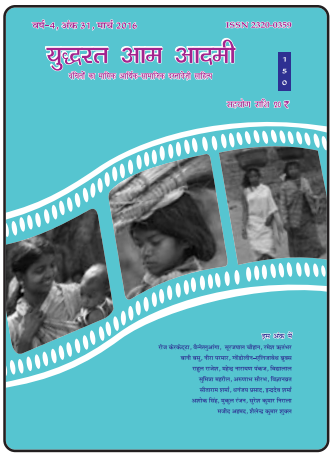

सदस्यता की राशि खाता सं. 794412136 IFSC Code : IDIB000D008 इंडियन बैंक में जमा कर रसीद स्कैन कर के ईमेल : yuddhrataamaadmi@gmail.com पर भेजकर टेलीफोन नं. 09910744984 सूचित करे
कृपया फोन 12 बजे दिन से संध्या 6 बजे के बीच करें

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के हैं, इसमें 'युद्धरत आम आदमी', सम्पादक या सम्पादक मंडल की सहमति जरूरी नहीं है।
पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।
सम्पादन और संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

अनुक्रम

1.	**खरी–खरी बात**	रमणिका गुप्ता	03
2.	**औरत बोली**		
	शर्मसार होना चाहिए	सुनीता ठाकुर	05
3.	**कहानियां**		
	कटहल का पेड़	वैन्नेत्लुआंगा	06
	एक छोटी–सी लड़की	बानी बसु	12
	आखिरी निर्णय	महेन्द्र नारायण पंकज	18
	डायन	विद्यालाल	20
4.	**अश्वेत कवयित्री**	ग्वेंडोलीन एलिज़ाबेथ ब्रुक्स	21
5.	**कविताएं**	सूरजपाल चौहान	22
		सुरेश कुमार निराला	23
		रमेश ऋतम्भर	24
		मजीद अहमद	27
		सुमित्रा महरौल	28
		डॉ. निशा भोंसले	29
		सीताराम शर्मा	30
		विज्ञान व्रत	30
6.	**स्त्री की दुनिया**		
	सबसे पहले दूर करनी होगी सोच की गरीबी	स्वाति ठाकुर	31
	घरेलू हिंसा बनाम कानूनी ज्ञान	रेणुका	33
7.	**आदिवासी भाषा विज्ञान**		
	खोरठा साहित्य : विकास, दशा और दृष्टि	धनंजय प्रसाद	35
8.	**आदिवासी आलोचना**		
	रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री जीवन संघर्ष	इन्द्रदेव शर्मा	40
9.	**पहाड़ की दुनिया**		
	पहाड़ी समाज की सामाजिक संरचना	अंजली जोशी	46
10.	**जनसरोकार**		
	कच्ची कॉलोनियों का खेल	मुकुल रंजन	51
11.	**विशेष रपट**		
	आदिवासी विरासत की बहुभाषी दुनिया		54
12.	**हलचल**		
	रोहित वेमुला की स्मृति पर आधारित जाति भेदभाव के घेरे में उच्च शिक्षा केन्द्र	विकास कुमार	71
13.	**निकष**		
	जहां प्रेम कमजोरी नहीं ताकत है	अशोक सिंह	72
	कविता की उर्वरता में दिन बनने का क्रम	शैलेन्द्र कुमार शुक्ल	77

खरी-खरी बात

रमणिका जी के अस्वस्थ होने की वजह से
इस बार उनकी डायरी से ही यह अंश... –कार्यकारी संपादक

जुनून पैदा करो पहले युद्ध का फिर चुनाव का

रमणिका गुप्ता

रूस के विघटन के बाद उत्तर आधुनिकतावादियों ने कहना शुरू किया था कि इतिहास का अन्त हो गया–विचार समाप्त हो गया। इस तरह उन्होंने विश्व की दलित, पिछड़ी, कुचली, मेहनतकश जनता के समानता, भाईचारा और आजादी के समाजवादी सपनों पर सायास ग्रहण लगाने का काम किया। उस दुनिया में युद्ध नहीं, विनाश नहीं, विकास की असीमित आकांक्षाएं होंगी के सपने से जनता को वंचित करने की एक मुहिम चलाई गई, ताकि वह पूंजीवादी साम्राज्यवादी व्यवस्था की हकीकत को स्वीकार कर ले। ठीक उसी प्रकार भाजपा वाले, सरकार में आने के बाद से जोर–शोर से धर्मनिरपेक्षता को अप्रासंगिक सिद्ध करने में जुट गए हैं, ताकि साम्प्रदायिकता, जो एक प्रकार से अछूत मानी जाने लगी थी भले देश में घटित होती थी– को वे गौरवान्वित और स्पृश्य बनाने में जुट गए। धर्मनिरपेक्षता को अप्रासंगिक एवं निरर्थक सिद्ध करने का इन साम्प्रदायिक शक्तियों का केवल एक ही मकसद है कि लोग यह विश्वास कर लें कि वे दिन अब वापिस नहीं लौटेंगे, जब विभिन्न धर्मावलम्बी सद्भाव से रहने का सपना देखते थे। अब तो एक बड़े समूह के सामने अल्पसंख्यक समूह को दबकर रहना ही होगा। उसे अपने अधिकारों में कटौती स्वीकारनी ही होगी। अन्यथा उनके सैनिक उनके सेवक अथवा उनका साधू समाज डंडा–सोटा लेकर उन्हें मजबूर कर देगा, अपनी दादागिरी मानने के लिए। विकल्प मरना ही होगा–जिसके लिए सामान और समा पहले से ही तैयार था। आखिर जाएंगे कहां वे? ''रहना है तो उनकी शर्तों पर रहो!'' बस यही विकल्प रहने देंगे वे लोग।

एक और सोच जो अनिवार्य बना दी जा रही है, वह 'वैश्वीकरण' की सोच है। वैश्वीकरण अर्थात् उदारनीति अर्थात् निजीकरण अर्थात् डब्ल्यू.टी.ओ.। अब जब उदारीकरण हो ही गया है, वैश्वीकरण हकीकत बन ही गया है, तो इसे मान लो कोई और विकल्प तो है नहीं, यानी जनता को विकल्पहीन बना दिया जा रहा है। एक अन्धी गली में लाकर खड़ा कर दिया गया है, जहां से आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं। पीछे तो इनके सोटाधारी, डण्डाधारी खड़े ही हैं। स्वदेशी का अर्थ भी तो अब वैश्वीकरण हो गया है भाजपाइयों की नज़र में। वसुधैव कुटुम्बकम के दायरे में देश के दलित, पिछडे तो थे ही नहीं हिन्दुत्ववादियों के शास्त्रों में लेकिन उन्होंने अपनी राजनीति में वैश्वीकरण को 'वसुधैव' के सूत्र से जरूर जोड़कर दिखना शुरू कर दिया है। कांग्रेस सरकार तो परदे के पीछे यह करती रही है पर वाजपेयी जी तो अमेरिका को आश्वस्त कर आए हैं कि 'फिकर की कोई बात नहीं, जल्द ही वे उनके मनोवांछित सुधार लागू कर देंगे।'

तीसरा नारा जो ज़ोर–शोर से उछाला गया वह है–परमाणु स्वायत्तता की नीति। परमाणु यानी देश पर सतत् लटकी युद्ध की तलवार, सतत् बंधी खतरे की घंटी। आज वर्चस्व का प्रतीक बन गया है परमाणु। आजादी के समय विभाजन से उत्पन्न हुई कटुता को मिटाने की बजाए साम्प्रदायिकता को इन शक्तियों ने हमेशा पाल–पोसकर रखा है। इन भगवाधारी शक्तियों ने सत्ता में आते ही उसे शत्रुता में बदल दिया है। पड़ोसी देशों से ज्यादा शक्तिशाली होने की होड़ बुरी नहीं पर दूसरे को सबक सिखाने के लिए या दूसरे पर अपनी दादागिरी जमाने की मंशा, दोस्ती की तो नहीं ही है–वह शान्ति से सह–अस्तित्व की भी नहीं होती। बल्कि यह शत्रुता की नींव मजबूत करती है, जो युद्ध को न्योता देती है। उससे दोनों देश विध्वंस की ओर जाते हैं। अब तक पाकिस्तान की राजनीति केवल भारत के साथ युद्ध के उन्माद को जिन्दा रख

कर खुद को जिन्दा रखने की रही है। अब भारत में भी इस उन्माद को हवा देकर, एक अन्ध–राष्ट्रीयता का माहौल बनाया जा रहा है। राष्ट्रीयता को देश की जनता से नहीं, केवल देश की भौगोलिक सीमाओं से जोड़ कर परिभाषित किया जा रहा है। देश की जनता को दो जून खाना मिले या न मिले, पीने का पानी मिले या न मिले– तन पर कपड़ा हो या न हो–रोज़गार की गारंटी हो या नहीं–बस आन–बान के लिए मर मिटना जरूरी है। यह आन–बान गरीबी रेखा के नीचे कीड़े–मकौड़े की तरह रहती जनता को गरीबी रेखा से ऊपर लाने के लिए नहीं है, यह आन–बान तो बस, अपने धर्म को दूसरे धर्म से श्रेष्ठ सिद्ध करने में है–अपने देश की दूसरे देश पर दादागिरी कायम करने को प्रेरक है। इस झूठी आन–बान के लिए युद्ध एक अहम् की तुष्टि है, चाहे कितना ही तबाह न हो जाए देश।

युद्ध का नाटक इन शक्तियों को कायम रखता है–इसलिए युद्ध करो–अरबों रुपए खर्च हो जाते हैं, तो हो जाएं–हजारों लोग शहीद हो जाएं, तो हो जाएं–बस उन शहीदों को गौरवान्वित कर, उनकी मजारों पर मेले लगाओ पर उनको शहीद होने से रोको नहीं।

छद्म दोस्ती का माहौल बनाओ, घुसपैठ हो तो चुप्पी साध जाओ–फिर बिना शत्रु की ताकत का अन्दाज़ लगाए, दो दिन में घुसपैठिए भगाने का गजब का एलान कर जनता का मन मोह लो। लड़ाई लम्बी खिंचने की घोषणा करो, शहीद होने के लिए सैनिकों को ललकारो पर अपनी गल्तियां मत स्वीकारो! घुसपैठ क्यों होने दी गई–इस पर बहस न हो। इस मुद्दे पर लोकसभा या राज्यसभा का सत्र बुलाने की जरूरत नहीं। 140 किमी अंदर तक घुसपैठिए घुस आए, गुप्तचर एजेन्सी क्या करती रही? इन सवालों का जवाब पूछने वालों को देशद्रोह करार दो। इतने जवान आपकी गलती से शहीद हुए, यह पूछना अनैतिक करार दो। बस जुनून पैदा करो, पहले युद्ध का–फिर चुनाव का।

चुनाव के लिए युद्ध थोपा गया, शहादत थोपी गई देश पर। सैनिकों को मरना पड़ा, सरकार की गलतियों के चलते। अब परमाणु नीति की घोषणा कर देश की जनता की अन्ध राष्ट्रीयता को भड़का कर एक और चुनावी स्टंट रचा जा रहा है। इस नीति पर तो तभी बहस होनी चाहिए थी जब सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् बनाई थी पर अब जब सरकार खुद ही कामचलाऊ है, तो वह बहस को परमाणु अस्त्रीकरण की बहस में तब्दील करा रहा है, ताकि इसे भंजाया जा सके।

युद्ध किसी देश में विकास नहीं लाता। वह विध्वंस लाता है। भारत को विकास की दरकार है–राष्ट्रीयता का इस्तेमाल जनता के विकास से जोड़ने की बजाय, उसे युद्ध के जुनून से जोड़ा जा रहा है। ठीक है, हम पर युद्ध थोपा जाए, तो जरूर मुकाबला किया जाए लेकिन युद्ध की स्थितियां जान–बूझकर पैदा करना कहां की अक्लमन्दी है? परमाणु की धमकी देना कहां की बुद्धिमता है? परमाणु नीति तो देश में पहले से विकसित हो ही रही थी। एक दिन में तो परमाणु का विकास नहीं हुआ। उसका ढ़िंढ़ोरा पीटकर दुश्मनों को आगाह करना, कहां की रणनीति है? अपने पत्ते खोलना, खेल का चातुर्य नहीं। उन्हें समय पर ही खोला जाता है, पहले नहीं दिखाया जाता। हम पत्ते खेल कर या तो दुश्मन को आगाह करते हैं अपनी चाल सुधारने के लिए–अथवा उसे डराने के लिए चाल चलते हैं, जो उल्टी भी पड़ सकती है–वह दुश्मनी में इजाफ़ा भी कर सकती है, तो दुश्मन को सावधान भी कर सकती है।

क्या भारत और पाकिस्तान दोनों युद्ध की स्थिति बर्दाश्त करने के काबिल हैं? पाकिस्तान में तो सेना ही वर्चस्व करने के काबिल है। वहां तो सेना का वर्चस्व रहा है, जनता पूरी तरह काबिज नहीं है। पर भारत में तो हम जनतंत्र की डींग हांकते हैं। हमारी सेना भी हमारे कब्जे में हैं, जो देश की सरकार को समय रहते सूचनाएं देती रही है। हम ही समय पर कदम न उठाएं तो कौन दोषी?

आज देश पर कारगिल थोपा गया–सैनिकों को शहादत के लिए मजबूर किया गया! क्या इससे बचा नहीं जा सकता था? और अब परमाणु नीति के शस्त्रीकरण की चर्चा चलाकर, हम अपने देश की पूरी विदेश नीति को बदल रहे हैं। पहले तो कारगिल में गलत नीतियों के कारण सरकार ने कश्मीर में अमेरिका का हस्तक्षेप होने दिया, अब चुनाव के समय परमाणु प्रवेश की बहस चला कर युद्ध–नीति की घोषणा करना, भारत को अलग–थलग करना ही होगा।

औरत बोली

शर्मसार होना चाहिए

सुनीता ठाकुर

कल जे.एन.यू. में हुए छात्र प्रदर्शन के बारे में जी न्यूज़ पर एक सवाल उठाती रिपोर्ट देखी, आत्मा हुंकार उठी–रिपोर्ट के मुताबिक छात्र अफ़जल गुरू की हिमायत करते हुए नारे लगा रहे थे–''एक अफ़जल को मारोगे हर घर से अफ़जल निकलेगा'', ''इंडिया गो बैक'' आदि–आदि। इस रिपोर्ट में कुछ भी बनावटी होने की संभावना नहीं थी क्योंकि किसी देशभक्त ने मोबाइल से उस पूरी घटना की फिल्म बनाकर भेजी हुई थी। इस रिपोर्ट से रिपोर्टर की ही भांति हम सबके मन में कुछ सवाल उठ खड़े हुए, हैरानी की बात है कि इन सवालों पर अपने साथी समूह और व्यक्तियों से बात करने पर भी किसी की कोई राय या बात सामने नहीं आई, सवाल थे–'क्या इंडिया हमसे अलग कुछ है? वे किस इंडिया को वापस जाने की हुंकार लगा रहे थे? क्या अफ़जल गुरू जैसे आतंकी या आतंकी मानसिकता वाले लोग किसी हिमायत के लायक होते हैं? क्या अफ़ज़ल गुरू और किसी फ़ौजी को समान तराजू में रखा जा सकता है? क्या दोनों के हश्र को एक जैसा सम्मान दिया जाना चाहिए? क्या आतंकवाद देश की रक्षा से बड़ा हो सकता है? क्या लोकतंत्र में आज़ादी की कीमत राष्ट्र सुरक्षा से चुकाई जा सकती है? क्या अभिव्यक्ति की आज़ादी का ऐसा दुरूपयोग क्षम्य अपराध माना जा सकता है?

इन तमाम सवालों के हम कोई जवाब नहीं देना चाहते। इसलिए एक बात दिल दिमाग को झकझोर देती है– अगर आपको इंडिया की नीतियों और उसकी सरकार के तौर तरीकों से इतनी ही दिक़्क़त है तो या तो विकल्प लेकर सामने आइए या फिर जिन लोगों की आप इतनी हिमायत करते हैं उनके गढ़ों में जाकर रहने का साहस जुटाइए। उन मुलकों में जाकर रहने का साहस भी जुटाइए जहां इन आतंकियों के गढ़ हैं और जो खुद आतंकवाद का शिकार हैं। देश में रहकर देश विरोधी कार्रवाइयां जरा वहां जाकर भी करके देखिए आपको पता चल जाएगा कि आज़ादी और अपनी बात कहने का हक़ आपको कहां और किस तरह से मिल सकता है! यह हिंदुस्तान ही है जहां इतनी आज़ादी मिल सकती है कि आप अपने मुल्क और उसकी सरकार को सरेआम ललकार सकें और हद तो यह कि गैरमुल्क के नारे बुलंद कर सकें। मन में सवाल उठता है कि क्या धर्म किसी भी देश की सुरक्षा और एकता से बढ़कर हो सकता है?

क्या हो गया है हमें, हम अपने ही मुल्क को निजी स्वार्थों में बंधकर लूटने में लगे हैं? धर्म की राजनीति ने मूल समस्याओं का कुछ किया हो या न किया हो, मगर देश में अंदरूनी फूट और वैमनस्य का माहौल ज़रूर पैदा किया है। जातिगत हिंसा और भेदभाव को झेलने वाले लोगों की सुनवाई भी कहां होती है और कौन करता है, कोई बताए ज़रा मुझे? अजीब सी बात है आज हम सरकार से सब कुछ मांगते हैं, सरकार को कोसते हैं, मगर जब चुनावों का समय आता है तब अपने सबसे महत्वपूर्ण नागरिक ज़िम्मेदारियों और अधिकारों से चूक जाते हैं। छोटे–छोटे स्वार्थों में फंसकर उन्हीं भ्रष्ट नेताओं को चुनते हैं जिन्हें हम आज सरकार कह कर कोस रहे हैं। और फिर इन्हीं नेताओं की भ्रष्ट राजनीति का शिकार होते हैं। हमें एक नागरिक के अधिकार चाहिए तो एक ज़िम्मेदार नागरिक की भूमिका भी निभानी होगी, और बहुत अफ़सोस की बात है कि हम अपने ही देश में लोकतंत्र की हत्या करने में आततायियों की मदद कर रहे हैं। हमें खुद को यह तय करना होगा कि हमारे लिए क्या महत्वपूर्ण है देश; या धर्म को भुनाती राजनीति और राजनेता। आतंकवाद का समर्थन करने से पूर्व उन्हें एक बार तो अपने नागरिक दायित्वों के बारे में सोचना चाहिए था। आखिर को आतंकवाद और उसका समर्थन करने वाले लोगों का नुकसान अंततः हम ही को उठाना पड़ता है। मासूमों की हत्या और आतंक मचाने वालों का भला क्या मजहब हो सकता है? क्या कभी हम निजी स्वार्थों का चश्मा उतारकर राष्ट्र और नागरिकता के नज़रिए से भी चीजों को देख और समझने की कोशिश कर सकते हैं?

मो.: 9810115287

मिजो कहानी

कटहल का पेड़

वैन्नेहत्लुआंगा
अनु. : अकील कैस

उस कटहल के पेड़ का जीवन किसी सूखे, मुरझाए पेड़ से भी अधिक अर्थहीन था। उस पेड़ को अलग–अलग श्रेणियों के मज़दूरों और अप्रवासियों ने इतना प्रताड़ित किया था कि उसके निशान साफ़ दिखाई देते थे। पेड़ की निचली डाल को इतना क्षत–विक्षत कर दिया गया था कि पहचानी नहीं जाती थी। पेड़ में एक जगह, शाखाएं दो भागों में बंटती थी–एक खाली सीमेन्ट की बोरी, एक अकेली चप्पल, एक टूटा–फूटा फावड़ा और एक पुरानी लुंगी लटक रहे थे। ऐसे ही दूसरे स्थान पर पेड़ की कोमल कोंपले निकल रही थीं। और इस सबसे परे, जहां तक नज़र जाती थी, आकाश में ऊपर एक बड़ा–सा बरसाती बादल दिख रहा था जो इतना घना था कि मानो; उस पृथ्वी पर अब कभी सूरज चमकेगा ही नहीं। यह भी पता चलता था कि कटहल के बाकी पेड़, कुछ नई कोंपलों और कुछ कुम्हलाई पत्तियों के साथ जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। शाखाओं के बीच एक रस्सी कसकर बंधी थी, जिसके दूसरे छोर के साथ वाटर प्रूफ कपड़े की एक बड़ी–सी चादर बांधी गई थी। रस्सी और चादर जहां एक–दूसरे से जुड़ती थीं एक बड़ा लाउडस्पीकर रखा था और उसी के नीचे बहुत–सी एक जैसी बेन्चें रखी हुई थीं। बहुत से लोग इन बेन्चों पर बैठे हुए थे। मुख्य तौर पर ये ज़मीनी वास्ताविकता से जुड़े लोग थे... आम लोग, आपकी और मेरी तरह!

अगल–बगल बैठे और ध्यान से देखने पर वहां कुछ बहुत मशहूर चेहरे भी दिख सकते थे। और उन चेहरों से परे देखने पर एक ताबूत नज़र आता था जिसमें एक मानव शरीर था। लेकिन यह एक बहुत ही साधारण ताबूत था, फिर भी ढक्कन पर रखे फूलों के छोटे से गुच्छे के साथ पूर्ण था। कैमरामैन से आगे शोकाकुल परिवार की झलक दिख पड़ती थी। आप शायद उन्हें बहुत अच्छी तरह न जानते हों! और अगर आप ताबूत में रखे व्यक्ति को नहीं जानते तो मैं सब बताऊंगा। यदि आप न जानना चाहें तो भी बताऊंगा कि ताबूत में रखा व्यक्ति मेरी प्रेमिका थी, जिसे मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं अब आपको बताता हूं और आप बिना शक अचरज में पड़ जाएंगे। करीब बीस साल पहले वह सच ही मेरा अपना था। अब सोचने पर शायद लगे कि मैं इसलिए ऐसा कह रहा हूं क्योंकि कम ही लोग होंगे जो इस घटना के बारे में जानते होंगे या फिर लोग शायद सोचें कि मैं उन लोगों में से हूं जो दावा कर सकते हैं, "मैंने तो उसकी स्कर्ट का किनारा भी नहीं छुआ!" लेकिन इस सबके बावजूद वह मेरी अपनी थी। मैं आपको इस विषय में बताऊंगा और आपको भी यह घटना असाधारण लगेगी।

बीस साल पहले यह जगह, जहां कटहल का पेड़ है, एक सपाट मैदान का टुकड़ा था। वहां दूसरा कोई पेड़ नहीं था और फुटबाल खेलते समय बच्चे पेड़ का इस्तेमाल गोल पोस्ट की तरह करते थे। पास ही एक घर था जहां मैं अक्सर आता–जाता था, शायद उतना ही जितना कि मकान के मालिक! ऐसा नहीं कि मैं उस मकान में वहां की भौतिक सुविधाओं के चलते आता–जाता था, यह भी नहीं कि मैं वहां रहने वालों पिपरी और उसकी बेटी नोनावी के दिल की अच्छाई से प्रभावित था। दरअसल यह उस काले संदूक के कारण था जो उनके बेडरूम के अन्दर पलंग के नीचे रखा रहता था। संदूक के एक ओर लिखा था, एलएस लुशाई और संदूक के अन्दर शराब की बोतलें होती थीं और वे उन्हें छुपा कर रखती थीं। मैं उनके

राज़ को राज़ ही रखता था क्योंकि शाराब ही वह चीज़ थी जो मुझे सबसे ज़्यादा प्यारी थी। एलएस लुशाई मकान के भूतपूर्व मालिक थे और सेना में भर्ती होने के बाद उनकी शादी हो गई थी। उनकी बेटी अभी तीन साल की ही हुई थी कि विद्रोह आरंभ हो गया और वे भागकर भूमिगत हो गए। उसके बाद उनकी कोई खबर नहीं आई। विद्रोह के चरम पर सेना अक्सर कुछ घरों में जाकर खोज़बीन करती थी। यूं तो घरों में भारतीय सेना के सिपाहियों की फोटो सजा कर रखने का मतलब कुछ हद तक शांति हुआ करता था पर इन मां–बेटी के लिए पिता की फोटो सजाना समझदारी का काम नहीं था। उन्हें तो उनकी हर चीज़ हटानी पड़ी थी। ज़मीन में एक गड्ढा खोद कर इन्होंने उनका सारा सामान घास के फूलों के नीचे दबा दिया था। जब शान्ति हुई और इन्होंने उनका सामान खोद कर निकाला तो पाया कि सन्दूक में एक चूहे ने छेद कर के हर चीज़ को कुतर के रख दिया था। केवल सन्दूक ही बचा हुआ था। इन्होंने सन्दूक का कोई दूसरा इस्तेमाल नहीं किया। कुछ हो भी नहीं सकता था सिवाय इसके कि अपनी जीविका कमाने के लिए उसका सही इस्तेमाल किया जाए। अब मां–बेटी के लिए यह उनके खजाने का सन्दूक बन गया। कभी–कभी बीते दिनों का ख्याल करते हुए पिपरी उदास होकर अतीत के पलों में चली जाती... "उनकी सबसे छोटी फोटो नष्ट करने का भी मुझे कितना पछतावा है।"

और ऐसा कहते हुए वह उन दिनों बड़ी शिद्दत से पछताती। हालांकि एलएस लुशाई और मैं कभी समकालीन नहीं रहे लेकिन उनकी बेटी नोनावी के चेहरे और व्यक्तित्व को एक नज़र देखने से ही पता लगता था कि वह वास्तव में सम्मान के साथ स्मरण किए जाने के काबिल थे।

नोनोवी अपने यौवन के प्रथम चरण में एक बहुत प्यारी लड़की थी और अगर वह किसी प्रतिष्ठित घराने की होती तो आइज़ोल शहर में उसके चर्चे हो रहे होते। यद्यपि वह एक गरीब विधवा की बेटी थी, ऊपर से नीचे तक तरीके से सजी रहती थी जो घर में आने वाले किसी भी युवा को आकर्षित करने के लिए काफी था। यहां तक कि हममें से काफी ऐसे थे जो उसे सहलाना या बांहों में भर लेना चाहते थे खास तौर पर कुछ जमा–चढ़ा लेने के बाद। पर वह ऐसी नहीं थी कि कोई उसे अपनी मर्जी से छू ले। लगता था वह जान–बूझकर ऐसा दिखाना चाहती थी; जैसे पुरुषों को नापसंद करती हो और यह शायद इसलिए था क्योंकि इतने सारे प्रेमी उसके इन्तजार में थे। और इसलिए वह फक्कड़बाज़ नौजवानों से भागकर अपने बेडरूम के अंदर लिखित शब्दों की दुनिया में चली जाया करती थी। हां उसका लगभग सारा समय किसी किताब में सिर गड़ाए बीतता था।

मेरा नाम लालदाईलावा है, लोग मुझे दाइया कहते हैं और अक्सर वे लोग भी जो मुझसे छोटे या बड़े हैं मुझे 'पा दाइया' बुलाते हैं। मेरे पिता आइजोल के बाजार में बहुत सफल और प्रतिष्ठित व्यापारी थे। असल में अगर मैं उनका नाम बात दूं तो आपमें से बहुत उन्हें पहचान जाएंगे। हम तीन भाई थे और हम सबने व्यापार की जगह शराब को चुना। पिता की मृत्यु के बाद हमने दुकान बेच दी और भटक गए। मेरे बड़े भाई शराब के कारण मर गए और सिर्फ मैं ही बचा। मेरी शिक्षा दौरपुई स्कूल में हुई थी और मेरी दिलचस्पी स्कूल की पाठ्य–पुस्तकों से अधिक काउबॉय बुक्स में थी। मैं डस्टी फॉग और बोवी नाइफ के साथ ज्यादा व्यस्तता और चढ़ती जवानी में मेरी दिलचस्पी जीन्स पहनने, दुरुस्त की गई जीपों में घूमने और चाकू से शिकार करने में ज्यादा थी। शिकार में कोई जानवर हाथ लग जाए तो अच्छा लगता था पर उतना ही अच्छा खाली हाथ आने के बाद कुत्ते के मांस की दावत उड़ाना भी लगता था।

पहले मैं सिर्फ सोशल ड्रिंकर था और केवल दोस्तों के साथ ही पीता था। कुछ समय बाद शराब ही मेरी साथी बन गई, और फिर शराब मेरा खाना, मेरा जीवन..... मेरी रक्त–रेखा बन गई। यहां तक की बीस–बाईस की आयु में ही शराब ने अपने निशान मेरे चेहरे पर छोड़ दिए। मैं जितना था उससे कहीं बड़ा दिखने लगा था। लोग अक्सर सोचते थे मैं तीस से कहीं ऊपर हूं, क्योंकि मेरा शरीर कमजोर था और मुझमें नौजवान औरतों का लोभ भी नहीं था। इसके चलते नोनोवी को लुभाने की कोशिश करने की बजाय मैं चूल्हे के पास पिपारी की बगल में बैठक कर अधिक संतुष्ट महसूस करता था जो मुझे अपनी युवावस्था के दिनों की कहानियां सुनाया करती थी। उन दिनों में, जब मैं ज़रा ज्यादा ही पी लिया करता

था मैं बस उसके घर में ही सो जाया करता था। जो दूसरे पुरुष उस घर में आते थे मुझे घर का नियमित सदस्य ही समझते थे, बिल्कुल किसी भटके कुत्ते की तरह; चूंकि मेरा कद छोटा था, जब मैं वहां न होता वे मज़ाक करते–"पा दाइया कहां है? स्टूल उलट दो शायद नीचे हो।"

और इस तरह मज़ाक करने के अलावा उन्होंने मुझसे कभी कोई खतरा नहीं समझा, विशेष तौर पर नोनोवी को लेकर! फिर भी, अजीब बात है कि मैं; जो बमुश्किल इतने होश में था कि दिन–रात में अंतर कर सकूं, नोनोवी के प्रेम का पात्र बना। कई बार, जब मैं रात को जागता होता तब मैंने इस बात पर गंभीरता से विचार किया। मैं सच ही आश्चर्यचकित था। मैंने अपनी सारी भौतिक सम्पत्ति बेच दी थी और मेरा चेहरा लुटा–पिटा था। मेरे भविष्य के बारे में भी कहने के लिए कुछ नहीं था। कोई कारण समझ में नहीं आता था कि क्यों उसने मुझे प्यार के लिए चुना। हां, एक कारण हो सकता था कि उनके परिवार में पिता का स्थान खाली था। केवल एक विधवा और उसकी बेटी थी और दोनों को ही स्थिरता और सुरक्षा की जरूरत थी। भीतर से नोनोवी की यही चाह थी। मैं एक ऐसा व्यक्ति था जिसके साथ वह स्वयं को जोड़ सकती थी इसलिए उसने अपनी तरह से, मेरे सामने पेशकश करने का निर्णय ले लिया था। लेकिन यह सही नहीं था। मैं इसका पात्र नहीं था क्योंकि मैं उससे विवाह करने के योग्य नहीं था। पहले मुझे यह स्थिति पसंद नहीं आई। मेरी इस आगामी दुर्दशा के कारण मेरे पीने की हानि हो रही थी। जैसे–जैसे समय बीता मैंने स्थिति की अनेदेखी करने की कोशिश की परन्तु इस बात को हल्के में लेना बहुत ज्यादा मुश्किल हो गया था। मैंने भागने की कोशिश की पर वह असंभव था और मैं सच ही दुविधा में पड़ गया। मैंने प्रयास किया कि ध्यान न दूं पर जब लड़के ने उसे मज़ाक में भी छुआ तो मेरे अन्दर अनिश्चित–सा आवेग जगा जो मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। तो यदि यह प्यार नहीं भी था, उस आवेग का कारण ईर्ष्या समझा जा सकता था और उसने मुझे भी सोचने पर विवश कर दिया, ''क्या मैं शराब की बोतल हूं या आदमी? यदि आदमी हूं तो मुझे खुद पर नियंत्रण पाना चाहिए।''

एक रात जैसे ही मैं घर में घुसा पिपरी को बोध हुआ कि उसे पास ही एक निकट संबंधी की मृत्यु पर जाना है, "अवि, अवि, अवि वे मेरे बड़े भाई थे, और क्योंकि मेरे पिता नहीं हैं, मुझे जाना होगा। पा दाइ, तुम घर सम्भालो। हवा शोर कर रही है। पर आज कोई आएगा नहीं, घर में शराब नहीं है।"

यह कहते हुए उसने जल्दी से शॉल लपेटा और बाहर निकल गई। नोनोवी और मैं साथ बैठे रहे। हवा बहुत प्रचण्ड रूप से चलने लगी थी। पता नहीं मैं किससे अधिक डर रहा था नोनोवी से या फिर हवा से। मैं खड़ा ... नोनोवी खड़ी हो गई। अपनी शर्म छुपाने को मैंने दरवाज़ा बंद कर दिया... वह पीछे आई। मैंने दरवाजा खोला, बाहर गया और मुर्गी का दरबा भीतर ले आया... नोनोवी मेरे पीछे बाहर गई। मैंने ज्यादा घने कटहल के पेड़ ... के नीचे शरण ली... नोनोवी तब भी पीछे आई! हम खड़े हो आमने–सामने और बिजली चमकी। बिजली की उस चमकदार कौंध में उसका चेहरा दमका। अचानक बत्ती गुल हो गई और उस अंधा कर देने वाली बारिश और कोड़े मारती हवा के बीच नोनोवी ने मेरा आलिंगन किया। और तब मैं एक पुरुष बन गया।

हरे–भरे कटहल के पेड़ की सघनता में, आंधी–बारिश की आड़ में क्या हुआ यह सारी दुनिया से अनजाना था। सिर्फ हवा, बारिश और कटहल के पेड़ को मालूम था। मैं समझ नहीं सका था कि क्या हुआ? हालांकि पिपरी का घर अक्सर आमंत्रण देता था पर कभी मुझे प्रलोभन नहीं हुआ। मैं दूसरे चरागाहों की ताक में रहने लगा। इस बीच नोनोवी ने मुझे ढूंढ निकाला और कहा उसे शक है कि वह गर्भवती है। नशे के व्यामोह में मैं उस पर हंसा और वह असहाय रोती रही।

"जो बच्चा मेरे पेट में है। कभी बिना पिता के नहीं रहेगा?"

"कैसे?"

"मैं खुद अपना फैसला लूंगी।"

बाद में सुना अपनी निराशा में उसने एक–दूसरे पुरुष की बांहों में सांत्वना पाई। उसने समझदारी से चुना था और विवाहार्थियों में से सबसे धनी व्यक्ति से शादी की थी। इसके अलावा मैंने उसके विषय में कुछ नहीं सुना।

"जागो...." मैंने खुद से कहा। आओ, बिजली, तूफान आंधी और बारिश, भयंकर बाढ़ की तरह आओ। अपने अभिशापों का प्याला लाओ और यहां उड़ेलो। मैं सबको सहूंगा। नर्क की आग को और दहकाओ, अपने सारे अभिशाप उनमें मिलाओ और केवल मुझपे बरसा दो।

और सच कहूं तो जितना मैंने बताया है उससे ज्यादा मैं उसके बारे में कुछ नहीं जानता था। मेरे जीवन में पहले से ज्यादा हलचल थी और मुड़कर देखने से समझा वह मेरे जीवन का सबसे भयंकर समय था। मैं हर समय नशे में रहता था। लेकिन फिर भी मैंने इस बीच कई बार शादी की। मेरी पत्नियां मुझे दूसरे पुरुषों के लिए छोड़ देतीं और जब ऐसा होता मैं उन्हें घर से निकाल देता और एक और पत्नी ले आता। मेरे परिवार ने मुझे मास्टर रोल का एक काम दिला दिया और मेरा काम मुझे कई गांवों में ले जाता था। इस बीच मैंने नए सिरे से जीवन जीने की कोशिश की पर बेकार और ज्यादा पीने की वजह से निलंबित भी कर दिया गया। मेरे पास अब आइज़ोल में रहने के लिए घर भी नहीं था। मेरे सारे रिश्तेदारों की मृत्यु हो चुकी थी इसलिए मैं निरुद्देश्य भटकता रहता था। मैंने 'जु' भी बेची और इसके लिए कई बार घर से निकाला गया।

मेरी एक बेटी थी जो अपनी मां के साथ रहती थी। बाद में बीस साल गुजर जाने के बाद मैं वापस आइज़ोल में था। मैं सूअर बेचता था जो दूसरे गांवों से इकट्ठा किए जाते थे। पर गहरे से गहरे नशे में भी मैं कभी नोनोवी को नहीं भूला, वह हमेशा मेरे मन की आंखों के सामने कौंध जाया करती थी और कटहल के पेड़ से गुज़र रही हवाओं के बीच उसका चेहरा हमेशा मुझे राहत पहुंचाता था। खुशी–गम और निराशा के क्षणों में मुझे नोनोवी का चेहरा दीख पड़ता और ऐसी एक भी रात बिताना मुझे याद नहीं जब मैंने उसके मुख की एक झलक न देखी हो। तब फिर, उसकी इतनी तीव्र कामना के बावजूद मैंने उसे दूर क्यों झटक दिया? आह! सिर्फ इसलिए कि वह मेरे जैसों के लिए बहुत अच्छी थी। जबकि दूसरे लोगों पर आत्माएं सवार होती हैं, मुझ पर नोनोवी सवार थी।

पिछली शाम हम चम्फाई से एक ट्रक लेकर आए थे। सूअरों का मालिक चम्फाई का एक अमीर आदमी था और वह आस–पास के गांवों से सूअर खरीदता था। बीच–बीच में वह एक ट्रक सूअर आइज़ोल भेजता रहता था और मेरा काम रास्ते भर सूअरों की चौकीदारी करना था। यह मेरी दसवीं ट्रिप थी। यह फायदेमंद नहीं था पर मुझे व्यस्त रखता था और मैं कम पीता था और इसलिए मुझे लगता था सूअरों का साथ मुझे माफ़िक आता है। चूकि मैं मनुष्यों की अपेक्षा सूअरों के साथ अधिक वक्त बिताता था, इसलिए मेरा कोई दोस्त भी नहीं था। पिछली रात बाकी रातों से ज्यादा खलबली भरी थी क्योंकि झुण्ड में ऐसा एक सूअर था जिसे दूसरे सता रहे थे इसलिए यह देखने के लिए कि कोई नुकसान न हो मैं ट्रक के पीछे सूअरों के बीच खड़ा हो गया। सारी रात बारिश के थपेड़े लगते रहे थे और जल्द ही सूअरों की मेंगनी के बीच मैं मिट्टी से ढंक गया।

सुबह मैंने सूअरों के बीच बैठे–बैठे सोने की कोशिश की। नींद नहीं आई क्योंकि नोनोवी मेरे मन की आंख में कौंध रही थी। मैंने थैले में रखी शराब का घूंट भरने की कोशिश की मगर डर था कि नशे की बेहोशी में नोनोवी की तस्वीर उतनी साफ नहीं रहेगी इसलिए पीने की हिम्मत नहीं हुई। जितना मैं होश में होता उतना ही नोनोवी का चेहरा साफ दिखता या फिर ऐसा लगता था कि उस पल मैंने शराब की जगह नोनोवी को चुना, हालांकि वह अब किसी और की पत्नी थी। मैंने फैसला किया कि उसे एक बार से फिर देखने के लिए उसे ढूंढ निकालूंगा। पौ फटने के साथ हम आइज़ोल पहुंच गए और सूअरों को हमने बाड़े में बंद कर दिया। रास्ता ऊबड़–खाबड़ था और सिगरेट के कश भरता मैं कुछ देर आराम के लिए रुका रहा क्योंकि सूअरों की मेंगनी से ढंका था, इसलिए घर के अंदर नहीं गया। लेकिन कुछ दूरी पर इंतज़ार करता रहा! एक आदमी जो सूअर खरीदना चाहता था मेरी बगल में खड़ा था और दैनिक वागालेनी पढ़ रहा था। मैंने अखबार देखा और पढ़ा, ''लालपियालोडी (नोनोवी) को आज दफ़नाया जाएगा।''

मैंने उससे अखबार छीन लिया और ज्यादा गौर से पढ़ा लेकिन हाय... नोनोवी, मेरी नोनोवी, ही थी...

अगर कटहल का पेड़ न रहा होता तो मैं मकान ढूंढ भी न पाता। पेड़ के पास की कभी परिचित जगह और वह आंगन जहां बच्चे खेला करते थे। पास चल रहे निर्माण के मलबे तले दब गए थे। एक नया मकान बन गया था और दृश्य बहुत बदल गया था। कहां था दरवाज़ा, ईंधन की लकड़ी का ढ़ेर, मुर्गियों का दरबा और एलएस लुशाई का संदूक? इनमें से कुछ भी वहां नहीं था। और वह एक व्यक्ति जो मुझे सब से अधिक प्रिय था अब ताबूत में लेटा था। फोटो सेशन के दौरान पास बैठे कुछ लोग फुसफसाए, "अब बिराबदी चैन की सांस लेगी।"

"हां, विडम्बना ही है, परिवार बड़ा तकलीफदेह था।"

"मुझे मालूम नहीं पिपरी के गुजर जाने के बाद क्या हुआ।"

"नोनोवी को सब विरासत में मिला और ज्यादातर जमीनें उसने बेच दी। वहां खड़े दोनों उसके बच्चे हैं और परिवार में बस यही बचे हैं।"

"उनके साथ कौन रहेगा?"

"दोनों बड़े और परिपक्व हो चुके हैं। बेटा रिनमाविया अपनी उम्र के दूसरे जवानों से भिन्न है। वह यंग मिजो एसोसिएशन के नेताओं में एक है। अजीब यह है कि उसकी मां ने उसके नाम पर बट्टा लगाया।"

"और रिनमाविया के पिता?"

"कुछ समय पहले उसकी मौत हो गई। वह शराबी था। और नोनोवी, वह सब कुछ बेचती थी जो उसके पास था। सिर्फ शराब ही नहीं इसीलिए उसने इतना छोटा जीवन जिया।"

चुप्पी छाई रही, जबकि मैं ज्यादा ध्यान देकर सुनने लगा।

''क्या पक्का कर लिया गया है... एचआईवी?''

"बिल्कुल, अस्पताल के अधिकारियों ने उसका शरीर प्लास्टिक की चादरों में लपेटा था। जल्द ही आंधी–पानी आ जाएगा। यही बहाना है, यहां से चले जाते हैं।"

मैं और अधिक सुनना नहीं चाहता था। नोनोवी के दोनों बच्चे ताबूत के पीछे खड़े थे, दुःख के आंसू बहाते और कोई उन्हें सांत्वना देने को नहीं! छोटी वाली करीब सोलह वर्ष की लड़की थी और लग रहा था जैसे मां के सांचे में ढली हो। मुझे उस समय की याद आई जब मैं और नोनावी पहली बार मिले थे और मैं कांप उठा। उसके भाई रिनमाविया को देख कर, जो करीब बीस वर्ष का युवक था। मेरे बाल खड़े हो गए। हालांकि मैं यात्रा के कारण गंदा था और इस बात के बावजूद कि मेरा शरीर धीरे–धीरे क्षीण हो रहा था, मेरी आखें अब भी काफी ठीक थीं और मैं अपने बेटे रिनमाविया को दूर से पहली नजर में ही पहचान गया। इच्छा हुई कि उसके पास जाऊं, उसे बांहों में भरूं, अपना बेटा कहकर पुकारूं। मगर खुद को देखकर समझ गया मैं सूअरों की मेंगनी से सना हूं इसलिए मैं पूरी तरह अव्यवस्थित वहीं खड़ा रहा। मालूम था यदि आगे बढ़ा तो पागल समझा जाऊंगा इसलिए चकराया–सा खड़ा रहा। मैं तेजी से कांप रहा था, फिर भी निश्छल था। मैंने फिर कटहल के पेड़ को देखा, क्योंकि एक वही था जो परिचित था... जैसा वह कहेगा वैसा ही करूंगा क्योंकि यद्यपि वह अपने जीवन के अंमित चरण में था कटहल का पेड़ अब भी गूढ़ था। मैं रिनमाविया को क्यों न बताऊं कि वह मेरा बेटा है? हममें से कोई भी वफ़ादार नहीं था.. मैं जीवित था पर पाप से बर्बाद था। नोनोवी को पाप ने कुचल कर मार डाला था। पर फिर भी समाज द्वारा हम पर उंगली उठाना उचित नहीं था क्योंकि भाग्य द्वारा हमारे सामने बिछाई गई राह बहुत टेढ़ी–मेढ़ी थी। और हालांकि हमको धूल बराबर समझा जाता था। मेरे ख्याल में हम अब भी काफी साफ थे।

दुनिया यह सब नहीं समझती थी। लेकिन कटहल का पेड़ पूरी तरह समझता था। अपनी समानुभूति के सबूत के तौर पर वह, लोगों द्वारा सताए जाने के बावजूद अब भी जीवित था। जब तक कटहल का पेड़ जीवित था, मुझे लगा रिनमाविया को सच मालूम होना चाहिए। लोग जो सोचते हैं सोचने दो मैं बता दूंगा। फोटो सेशन खत्म हो चुका था और ऊपर आसमान में विशाल, काले बादल मण्डरा रहे थे तभी अचानक बिजली कड़की! पूर्व दिशा से हवा का झोंका आया और सभी एक साथ उठ खड़े हुए, प्लास्टिक की चादरें चारों ओर चक्कर खाती रहीं। कटहल का पेड़ जोर से किरकिराया। मैंने ताबूत की ओर भागने की कोशिश की, जबकि भीड़ ने मेरी दिशा में भागने का प्रयास

किया। हम इधर–उधर भागने लगे और मैं गिर पड़ा। नौजवानों की टोली ने ताबूत को मकान की सुरक्षा में रख दिया। कुछ थे जो ताबूत के साथ कब्रिस्तान जाना चाह रहे थे। कुछ हर चीज़ के बेतुकेपन को लेकर बहस कर रहे थे। बाहर बारिश प्लास्टिक की चादरों पर थपेड़े मार रही थी। और कटहल के पेड़ को लगभग उखाड़े ही डाल रही थी।

तूफान आया।

हवा का तेज झोंका एक बार फिर आया और दुनिया ज्यादा अंधेरी हो गई। भीड़ और अव्यवस्थित हो रही थी..... और हवा ने कटहल के पेड़ के अन्दर लटके कपड़े ऊपर आसमान में उड़ा कर बिल्कुल तितर–बितर कर दिए। कटहल के पेड़ ने पूरी कोशिश की, किसी तरह बल इकट्ठा करके एक बार फिर खड़ा हो जाए, मैं एक साथ इसका गवाह और पोषक दोनों बना। प्लास्टिक की चादरों की अंतिम फड़फड़ाहट के साथ पेड़ जोर से चरमराया और बिजली की रेखाओं के बीच मैंने नोनोवी का चेहरा... नहीं ... कटहल का पेड़ देखा, अंतिम रूप से ढ़हते हुए। मैंने कटहल के पेड़ का अंत देखा, तभी मैं भी आखिरी तौर पर रुक गया।

"जागो...." मैंने खुद से कहा। आओ, बिजली, तूफान आंधी और बारिश, भयंकर बाढ़ की तरह आओ। अपने अभिशापों का प्याला लाओ और यहां उड़ेलो। मैं सबको सहूंगा। नर्क की आग को और दहकाओ, अपने सारे अभिशाप उनमें मिलाओ और केवल मुझपे बरसा दो।

"तुम। बुत की तरह क्यों खड़े हो? ये घटनाएं देखे जाने के सुख के लिए नहीं हैं, हमारी मदद करो। एक पुकार आई।"

मैंने जवाब नहीं दिया बल्कि एक जोर का मुक्का जमाया।

मैं आइज़ोल के पुलिस स्टेशन में जागा। सूजा, नोचा, खरोंचा, खून से लथपथ! भूरी वर्दी पहने एक आदमी ने मुझे कमरे के अंदर जगाया और मुझे पता चला मैं मुश्किल से चल पा रहा था। कुछ लोग आपस में मेरे बारे में बातें कर रहे थे।

"मुझे शक है वह नशे में है। बात करने लायक नहीं है।"

"पागल है। उसे सारा दिन हवालात में क्यों रखा? उसे छोड़ दो... उसका कुछ सामान है?"

"सिर्फ रस्सी जिससे वह बंधा था।"

"उसे फेंक दो, नहीं तो शायद उससे खुद को फांसी लगा ले।"

धीरे–धीरे मैंने पुलिस स्टेशन और मुख्य सड़क के बीच का रास्ता पार किया। दौरपुई मोहल्ले में लोगों की भीड़ में, मैं उस मकान को देखता रहा जो कभी हमारा था। उसमें रह रहे लोग मेरे लिए अनजान थे। कोई मुझे नहीं जानता था, किसी ने मुझे नहीं बुलाया। मैं बाएं मुड़ा और स्टैण्ड पर खड़ी बहुत–सी टैक्सियों की तरफ बढ़ा, तभी अचानक कॉयर का मधुर स्वर सुनाई दिया :

"एक रम्य स्थान है उद्धार किए गए लोगों का अद्भुत स्थान; एक धन्य, शानदार स्थान बादलों से बहुत परे।"

मैंने जाना कि यह गाना दौरपुई चर्च से आ रहा है। जब छोटा था तो मैं वह प्रार्थना करता था।

"कितना सुन्दर संगीत है ! कौन गा रहा है?" मैंने पूछा!

"प्रेस्बटरी कॉयर, सेशन के लिए अभ्यास कर रहे है।" उत्तर मिला।

"काश ये दावत दे रहे होते," मैंने अपने आप से कहा।

मेरी बात पर उनका हंसना सुनाई दिया पर कोई फर्क नहीं पड़ता था।

चर्च के अंदर एक आदमी ने मुझे रोका और आश्चर्य से देखा।

"क्या चाहते हो?" उसने पूछा।

"कितना सुंदर गाते हैं आप! मेरा दिल छू लिया।" मेरा विनीत उत्तर था।

वह चुप रहा और बहुत देर तक मुझे देखता रहा।

फिर पूछा, "बेचारे, तो तुम अपने पापों का पश्चाताप करना चाहते हो?"

"हां.... पर अनुमति नहीं है।"

"क्यों ! कौन रोकेगा तुम्हें?"

"कटहल का पेड़!"

संपर्क

ए–9 छनमारी आईजोल–796007 मिजोरम

नोट : 'जु' : चावल की परंपरागत बीयर

बांग्ला कहानी

एक छोटी–सी लड़की

बानी बसु
अनु. : सोमा बंद्योपाध्याय

लोग कहते हैं, मैं एक छोटी–सी लड़की हूं। 'ये तो बच्ची है' ऐसा कहते हैं, पर मैं जानती हूं कि मैं बच्ची नहीं हूं, बारहवीं में पढ़ती हूं। सत्तरह साल की हूं। बच्ची हूं क्या' 'दरअसल में बहुत नाटी हूं, मेरी हाईट केवल चार फूट साढ़े दस इंच है, ज्यादा मोटी भी नहीं हूं। सो मैं बच्ची लगती हूं। एक बार मेरी सहेली देवलीना की मां ने कहा था– 'अचानक तुम्हें देखने पर लगता है कि तुम लीना से बहुत छोटी हो, पर कोई अगर ध्यान से तुम्हारे चेहरे को देखें तो उसे समझ में आ जाएगा...।'

देवलिना ने मजाकिया हंसी हंसते हुए कहा था– "तब क्या ऋतु का चेहरा बहुत परिपक्व है मां...?"

आजकल मुझे अपना वही चेहरा नजर आता है। फूले हुए गाल। गोल आंखें। पलकें नहीं के बराबर। एकदम पतली भौंहे। थोड़ा ऊपर की ओर उठे होंठ। हंस कर देखा, तो दांतें चमकते हुए पर बांई ओर की केनाईन थोड़ी उभरी हुई है। मेरे दांत मुझे थोड़े बड़े भी लगे। मेरी टुड्डी पर एक गड्ढ़ा है। मेरी एक दूसरी सहेली रूबिना ने कहा – "तेरा ये गड्ढा ही तुझे उबारेगा ऋतु।"

रूबिना ने ऐसा क्यों कहा, इसे अगर समझना हो तो मेरी सहेलियों की आलोचना में शामिल होना पड़ेगा।

एक दिन भौंह तराशने की बात चल रही थी। देवलिना की भौंह बहुत पतली और टेढ़ी है। वैशाली ने कहा–"ऐसे भौंह आजकल आउट ऑफ फैशन है।"

रूबिना ने कहा – "न हो तो फिर क्या करें? जितना है उसे ही चेहरे के अनुरूप आकार देना है न। जैसे कि ऋतु का। भौंह ही नहीं है तो फिर शेप की तो बात ही क्या?''

"एटलीस्ट ऋतु को मुहांसे की समस्या नहीं है।" वैशाली ने कहा– "काली होने पर भी उसकी स्कीन अच्छी है" – रूबिना ने कहा।

"अरी ऋतु तुम स्कीन के लिए क्या करती हो?" मैंने धीरे से कहा– 'तुम क्या करती हो?'

"मैं? मेरा चेहरा तो मुंहासों से भरा है, कोई क्रीम नहीं लगा सकती, रेगुलर, मसूर की दाल और चंदन पीसकर लगाना पड़ता है। वैशाली तुम क्या करती हो?"

"मेरा तो मिक्सड स्कीन है। नाक चमकती रहेगी, कपाल चमकता रहेगा और दोनों गाल सूखे पांव रोटी की तरह लटके रहते हैं। मेरी बहुत समस्याएं हैं। कहीं भाप देना पड़ता है, तो कहीं बर्फ, कहीं शहद तो कहीं चंदन। बहुत गड़बड़ वाला मामला है। वो सब मां को मालूम है।"

"तुम्हें तो मिस समथिंग बनना ही है।" देवलिना ने चिढ़ाया।

"फिर भी दिल खोलकर मिस युनिवर्स नहीं कह पाई, क्यों?" वैशाली आंखें मिचमिचाकर हंसने लगी है।

"मिस युनिवर्स हो न हो मिस सेन्ट ऑनयोनिज तो बनी ही हुई है।"

मैंने वैशाली की ओर देखा। सर्दियों में उसके गाल फट जाते हैं। लाल दिखने लगते हैं। ऐसे ही उसका गोरापन थोड़ा लालिमा लिए हुए है। उसका चेहरा इतना सुन्दर लगता है कि आंख ही नहीं हटती। लंबी दुबली–पतली, ऊपर से पूरे बांह की लाल स्वेटर, हमारे स्कूल का युनिफॉर्म और ब्लू स्कर्ट। ऐसी लग रही है जैसे स्नो व्हाईट की कहानी से आई, उसे कोई भी मिस सेन्ट ऑनयोनिज नहीं कहता पर पीछे से उसे टीचर्स "ब्लडी मेरी" पुकारते हैं। उसे उस कुख्यात ऐतिहासिक रानी के नाम से क्यों पुकारा जाता है हमें समझ में नहीं आता था। देवलिना ने समझाया, यह एक कॉकटेल का नाम है। भेदका के साथ टोमेटो के रस के पंच को ब्लड़ी मेरी कहते हैं। यह एक बहुत स्वादिष्ट पेय है।

रूबिना ने कहा– "घबराओ मत ऋतु, तेरे चिन का यह गड्ढा ही तुझे सभी परेशानियों से उबार लेगा। मतलब किसी को भी फांस लेगा। इट्स वेरी सेक्सी।"

आईने में अब मैं अपने आप को देख रही हूं। बहुत बड़ा आईना। बीचवाला बहुत बड़ा और दोनों ओर के दो छोटे–छोटे। मेरी तीन छवि दिख रही है। भौंहहीन, गोल–गोल आंखें, उभरे हुए दांत, बेबी फेस, नाटी, काली, सीधे–सीधे बाल, केवल मात्र मेरी टुड्डी का गड्ढा ही मेरा आधार है। गरम–तरल जैसा कुछ मेरे अंदर बहने लगता है। मैं रौनक को चाहती हूं। न जाने कब से। प्रेम से मैं उसके साथ पढ़ रही हूं। वो मेरी कापियां लेता रहा और मैं भी उसकी कापियां लेती रही। एक साथ हम घर लौटते थे। उसका घर मेरे घर के बाद आता है। एक बहुत लंबी–चौड़ी छायादार गली में से उसे मुड़ना पड़ता था। उस पर मेरा एक जन्मगत अधिकार बन गया है। पर उसे ये सब कुछ समझ में नहीं आता है। हमारे स्कूल का वह सबसे बेहतर खिलाड़ी है। क्रिकेट टीम का कप्तान है, मिक्सड डबल्स में देवलिना उसकी पार्टनर है। पर रौनक की आंखें हरदम वैशाली को ढूंढती रहती है। यह सब कुछ मुझे समझ में आता है। खेलकूद से मैं दूर भागती हूं। थोड़ा–बहुत टेबल टेनिस खेलने की कोशिश करती हूं। बचपन से मैंने नाच सीखा है, फूट–वर्क अच्छा होना चाहिए, पर रूबिना मुझसे बहुत तेज है। ज्यादा चौकस है। इस नाच के लिए स्कूल के कन्सर्ट में मुझे कोई रोल मिलता हो, ऐसा भी नहीं है। वहां वैशाली बहुत खराब नाचते हुए भी हिरोइन बन जाती है। मुझे सखियों के झुंड में रखा जाता है। वैशाली को छोटे–मोटे स्टेप्स सिखाने के लिए मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ती है। घर लौटने पर मां पूछती, 'क्यों रे, श्यामा का रोल तुझे ही तो मिला न?'

'नहीं मां, इस फिगर में मुझे कौन श्यामा का रोल देगा?'

"तब क्या बज्र सेन?"

"क्या कहती हो मां, चार फूट साढ़े दस इंच की हाईट में बज्रसेन बना जा सकता है। क्या?"

मां ने अब मुझे ध्यान से देखा। पहली बार ध्यान से देखा। विस्मित होकर शायद कहना चाहती है कि सचमुच? यह फिगर ठीक नहीं है क्या? अच्छा तेरी हाईट कम है क्या? अच्छा... ऐसा क्या?

स्नेह का हाथ होती है मां। अपनी बेटी को सभी अप्सरा समझती है।

"भरतनाट्यम में तुम इतनी अच्छे हो। फिर भी..."

बाकी बातें आहों में खो गईं।

मां को मैं बहुत अच्छी तरह से समझती हूं। मैं इकलौती बेटी हूं, इकलौती संतान हूं। मेरा एक भाई भी था। जन्म के तुरंत बाद ही मर गया। मां–बाबा दोनों ही उस शोक से अब तक नहीं उबरे। हर समय मन में भार, विसन्न, चिंतातुर रहते हैं। मुझ पर मां–बाबा की बहुत आशाएं हैं। बचपन से ही मां घर के सारे कामकाज निबटा कर मुझे लेकर नाच, पेंटिंग्स के क्लास में, स्वीमिंग पुल में जाती थी। मेरे बीमार पड़ते ही तुरंत डॉक्टर को बुलाया जाता। खाने–पीने के मामले में मां बहुत सावधान रहती थी। बैलेन्सड डायट, बैलेन्सड करके दोनों पागल। ऐसे में हमारा सब कुछ एक चौखटे में फिट रहता। महीने में एक बार मामा के घर, एक बार बड़े बापा के घर वो भी दो महीने में एक बार फिर साल में एक बार बहुत दूर घूमने जाना और एक बार आस–पास छुट–पुट घूमने जाना।

ये सभी भग्न मुहूर्त की एक झलक मात्र है। केवल मात्र एक बोध है। पर ये बोध भी इतना अद्‌भुत है कि इसके लिए जीवन भी दिया जा सकता है। पर मुश्किल यह है कि जीवन के चले जाने पर बोध का भी कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

दसवीं तक मेरे मां–बाबा ने ही पढ़ाई–लिखाई में मेरी मदद की है। तब तक मैं पढ़ने में बहुत अच्छी थी। पर उसके बाद हायर सेकेन्डरी में आकर मुझे लगा जैसे मैं गहरे सागर में डूब गई हूं। अब बाबा–मां नहीं तीन–तीन ट्यूटर मुझे पढ़ाते हैं। नौ सौ रुपये टयूटर के खर्च के लिए, कपड़े, नाच के ट्रूप के साथ यहां–वहां जाने का खर्चा। मेरी मां तो नौकरी नहीं करती है, बाबा अकेले कमाते हैं। मुझे कभी–कभार बहुत खराब लगता है। देवलिना या वैशाली के जैसे हम उतने पैसे वाले नहीं। वे सब मेरी सहेलियां हैं, इसलिए कुछ साल से मां–बाबा ने वीसीआर, वॉशिंग खरीदे और इस साल मेरे जन्मदिन पर उन्होंने मुझे एक म्यूजिक सिस्टम लेकर दिया है। सीडी प्लेयर भी है। जन्मदिन पर सबने इसे देखकर उपहास किया।

देवलिना ने कहा– "मौसी मैं भी अगर इकलौती होती तो कितना अच्छा होता। है न? दादा ने सब बिगाड़ दिया।'' मेरी मां ने भरे गले से कहा– "किस्मत से तुम्हें दादा (बड़ा भाई) मिला है, तुम नहीं जानती तुम कितनी किस्मत वाली हो? ऋतु बहुत अकेली है।"

वैशाली ने कहा – "दादा से फिर भी निभ सकती है, दीदी से तो एकदम से..." रूबिना ने जवाब दिया – "एकदम सही।"

जन्मदिन के उत्सव के बाद मन फिका–फिका लगने लगा। मां से बोली – "आप लोग क्यों इतना कीमती उपहार देते हो?"

तुझे तो और भी बहुत कुछ देने का मन करता है रे, मां बोली।

"और भी बहुत कुछ? और कितना दोगी मां?" मैं...

"कैसे तुम लोगों को ये सब वापस करूंगी, मां?" हिचकिचाते हुए मां ने कहा–'तुम कभी भी अपने को किसी से भी छोटा या किसी से भी कम मत समझना।'

'परंतु क्या मैं वॉशिंग मशीन, वीसीआर, म्यूजिक सिस्टम इन सबसे उनकी बराबरी कर पाऊंगी? क्या मैं बन पाऊंगी वैशाली जैसी सुन्दरी, देवलिना जैसी खिलाड़ी, रूबिना जैसी चौकस, विदिशा जैसी ब्रिलियन्ट?'

मां बाबा को मैंने बहुत समझाया था कि साइन्स मेरा विषय नहीं है। गणित से मैं बहुत डरती हूं। बहुत मेहनत करके दसवीं में पचहत्तर नम्बर आए हैं। पर मेरा डर वहीं का वहीं है। केमेस्ट्री को मैं रट नहीं सकती, फिजिक्स मुझे समझ में नहीं आता, बॉयोलोजी प्रैक्टिकल से मुझे घिन आती है। मैंने समझाया था। बाबा ने कहा, 'तुम्हें स्टार मिला है। फिजिक्स–केमेस्ट्री में लेटर मिला है, जियोग्राफी और मैथ्स में कुछेक नम्बर के कारण लेटर मिस किया है। तुम क्यों डरती हो साइन्स लेने से? ये कैसी सोच है तुम्हारी?'

मां ने कहा– "तब क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगता"– "एकदम अच्छा नहीं लगता है मां, और कठिन भी लगता है। आप लोग समझते क्यों नहीं?"

"पर हम लोगों ने तो कब से सोच रखा है कि तुम्हें इंजीनियर बनाएंगे।"

बाबा ने कहा– "तुम्हें पता है मैं हेल्थ की परीक्षा में फेल होने के कारण इंजीनियरिंग नहीं पढ़ पाया।"

सपनीली आंखों से मां से कहा– "नीतू मौसी याद है? मेरी मौसेरी बहन? याद आया?"

"हां, आजकल कैनेडा में रहती हैं।"

"केवल रहती हैं? कितनी बड़ी इंजीनियर है, वहां मेरी समवयस्क है, वो मॉन्ट्रियल में बैठकर बड़ी–बड़ी मशीनों की डिजाइन तैयार करती हैं। और मैं? मूर्खता की मैंने साइन्स न पढ़कर। फिलोसॉफी पढ़कर ढाक के वही तीन पात कर रही हूं।"

पर मां साइन्स पढ़ने पर क्या मैं ज्वाइंट एग्जाम दे पाऊंगी और अगर दिया भी तो इस बात की क्या गारंटी है कि मैं नीतू मौसी जैसी ही ब्रिलियन्ट बनूंगी ही?

"कौन कह सकता है कि कौन क्या बनेगा? मां की आंखों में सपने ही सपने। बाबा ने कहा "ठीक है ऋतु तुम्हें जो अच्छा लगे वही पढ़ो। हम तुम पर कोई बोझ लादना नहीं चाहते हैं। तुम्हें जो अच्छा लगे। बस केवल इतना ही कहना था कि तुम्हारा डर निरर्थक है। ठीक है डिफिडेन्टली कुछ करना अच्छा नहीं। अच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती करना मैं पसंद नहीं करता हूं।"

कहा तो सही बाबा, पर चेहरे पर कोई उल्लास नहीं, मां का चेहरा भी बुझा हुआ था।

चाहे जो भी हो एक बार जब मां–बाबा ने मौखिक स्वीकृति दे दी है तब तो मैं आर्ट्स ही पढ़ूंगी। मैं पक्षी की तरह उड़ने लगी। स्कूल के रास्ते में ही देवलिना का घर फिर रौनक का। दोनों ने ही साइन्स लिया है। मैं आर्ट्स ले रही हूं कहते ही दोनों रुक गए। फिर रौनक बोल उठा– "ऋतु तब तो स्कूल जाने की कोई जरूरत नहीं है। तू सीधे डॉक्टर के पास जा। वो डॉक्टर कांजिलाल है न।"

"चल हट, उनके पास जाकर क्या करूंगी? वो तो..."

"पागलों के डॉक्टर हैं, तुम क्या सोचती हो, तुम्हारा दिमाग सही है क्या?"

देवलिना ने समझाया–"ह्यूमैनेटिक्स पढ़कर तुम क्या करोगी? एक कैरियर तो बनाना पड़ेगा न?"

इतने में ही रूबिना और विदिशा भी हमारे साथ हो गईं। रितेश और सृजन भी आए।

देवलिना ने कहा– "सुना तुम सभी ने! ऋतु आर्ट्स लेना चाहती है। हिस्ट्री, लॉजिक एज्यूकेशन, साइंस..." विदिशा ने पूछा – क्या बात है ऋतु? हम लोगों को एवॉइड करना चाहती है क्या? मेरा ये पथ तुम्हारे उस पथ से बहुत दूर है...?"

यह कहना गलत नहीं होगा कि विदिशा औरों से ज्यादा मिली हुई है। हम हर समय साथ–साथ रहते हैं। या यह भी कह सकते हैं कि मैं उसके पीछे–पीछे रहती हूं। विदिशा फर्स्ट गर्ल, सृंजय सेकेन्ड और मेरा स्थान तीसरा रहता है। कभी–कभार फोर्थ भी हो जाती हूं। दसवीं में सेकंड आई थी। विदिशा को छू नहीं पाई थी। विदिशा मुझे अपनी सहचरी मानती है। मेरे आस–पास रहने पर उसकी विशिष्टता और बढ़ जाती है। दसवीं में दूसरे स्थान पर आने पर भी मेरा मान वहीं के वहीं रहा। विदिशा ने ही कहा था– "टेनसिटि रहने पर सब कुछ कर सकते हैं। ऋतु को ही देखो न।"

"ऋतु की तरह दिन–रात पढ़ते रहना मुझसे नहीं होगा"– देवलिना ने घोषणा की। थोड़ी–बहुत मेहनत करके ही उसे स्टार मिला है।

फॉर्म लिया। ज्यों ही लिखने लगी रौनक ने आकर मेरे दोनों हाथों को मरोड़ कर पीछे कर दिया। विदिशा ने लिखा, केमिस्ट्री, मैथमैटिक्स। फिर मेरी ओर देख कर – "फोर्थ सब्जेक्ट क्या लेगी बोल? यहां तुम अपने मन की कर सकती हो।"

इतनी जोर से हाथ को मरोड़ा था रौनक ने कि हस्ताक्षर करते हुए मुझे दर्द हो रहा था। हस्ताक्षर से पहले रौनक की ओर देखा फिर विदिशा की ओर देखा–'यह दायित्व तुम सबका, ठीक है न?'

"ठीक है भई। कंधे चौड़े हैं मेरे।'' रौनक ने कहा। मां–बाबा ने कहा– "तुमने अपने से ही साइन्स लिया है, हमने तुम पर एकदम दबाव नहीं डाला। ज्यादा सोचो मत। ट्यूशन, लाइब्रेरी बुक्स जो भी चाहिए, बस कह देना हम सबकी व्यवस्था कर देंगे।"

ये सब सोचकर मेरी आंखें दुखने लगीं। आज एचएस की परीक्षा खत्म हुई। सप्ताह भर में हमें कुलु–मनाली घूमने जाना है। क्या मैं कुछ उपभोग कर पाऊंगी? मैथ्स में बहुत खराब किया है मैंने। केमेस्ट्री में भी बहुत गलतियां हुई हैं। एचएस इतना कठिन होगा, मैं क्या मेरे दोस्तों की भी कल्पना से परे था। कोई भी खुश नहीं है।

रौनक ने कहा–"मैं पहले से ही तुम लोगों को गुडबाई कह देता हूं।"

''क्यों? कहां जा रहे हो? स्टेट्स? टोयफेल दिया गया?"

"दिमाग खराब है क्या?'' रौनक ने कहा– ''ड्रॉपआउट।'' ''स्कूल ड्रॉपआउट कहा जाता है ये तो

जानता था पर...। रौनक विश्वास अब ये रिएलाइज कर रहा है। बाबा से कह दिया है एक फोटो कॉपी करने की मशीन लेकर बैठूंगा। कोर्ट के आसपास अगर कोई जगह मिल जाए जो...।"

वैशाली ने कहा– "धत् तुम्हें तो स्पोर्टस कोटा में कहीं भी मिल जाएगा। परेशानी तो मुझे है।"

चेहरा झुकाकर रौनक ने कहा, "पासकोर्स में बीएससी पढ़कर क्या होगा?"

सुमित बोला– "अभी से हताश होने की क्या जरूरत है। मैं भी तो फिजिक्स में शायद गड्डू मारूंगा तो क्या?"

"ज्वाइंट एग्जाम तो अभी तक बाकी है न? अगर इस साल नहीं पास हुआ तो अगले साल।"

रौनक ने कहा– ''ज्वाइंट में तो स्पोर्ट्स कोटा नहीं है।"

वैशाली नाखून चबा रही थी। बोल उठी– "ऋतु क्या तुम ज्वाइंट दे रही हो?"

"देना तो पड़ेगा ही । नहीं तो बाबा हताश हो जाएंगे। मां की आंखें... नहीं नहीं मुझसे ये सब सहन नहीं होगा।"

धीरे–धीरे वहां से मैं चली गई। विदिशा को कहते हुए सुना– "दरअसल ऋतु के पेपर बहुत अच्छे गए हैं। समझी?"

ठीक सत्तरह दिन के बाद ज्वाइंट खत्म होते ही ऐसा लगा जैसे कि मां के गर्भ से ही परीक्षा देती आ रही हूं। ऐसा लग रहा था जैसे दिनों से लेखन का अभ्यास, प्रैक्टिस करते रहने की पैनिक में ही दिन गुजरे हैं। क्या अब सब कुछ खत्म हो गया। अगर ज्वाइंट में नम्बर लग गया तो, चार साल तक इंजीनियरिंग, मैकेनिकल से आर्किटेक्चर तक जिसमें भी मिले। फिर तो। ओम शांति। सर्टिफिकेट मां–बाबा को पकड़कर कहूंगी–''अब तो खुश हो? क्यों? और कुछ मत कहना। अब मुझसे कुछ नहीं होगा। थिसिस भी नहीं विदेश गमन भी नहीं। नीतू मासी दिपू काका को उनके जैसे ही रहने दो। मैं भी अब अपने मन की जीऊंगी। एक नौकरी तो मिल ही जाएगी। फिर तो देखते ही देखते सफलता की सीढ़ियां चढ़ती चली जाऊंगी। अब तो कोई ट्यूटर नहीं। नाच भी छोड़ दूंगी। अब और नाचना अच्छा नहीं लगता है। क्या होगा नाचकर।''

आज रिजल्ट निकलने वाला है। ज्वाइंट का परिणाम पहले ही निकल गया है। बिल्ली के भाग में छीके का टूटना लिखा ही नहीं था। विदिशा रौनक दोनों ही पास हो गए। इतने दिनों तक रौनक और वैशाली की जोड़ी थी। अब शायद रौनक विदिशा की जोड़ी बनेगी। दोनों ही बेंगलुरु इंजीनियरिंग में जा रहे हैं।

सामने से एल सिक्स्टीन बस आ रही है। ये बस मेरे लिए शुभ है। चढ़ गई। स्कूल का स्टॉप आते ही एक ओर से सृंजय दूसरी ओर से देवलिना दोनों दौड़ते हुए उतर गए।

"देवलिना। एई लीना? कहां जा रहे हो?"

दुखी होकर देवलिना दूसरी बस में चढ़ गई। लीना के कितने अच्छे परिणाम आए हैं। शायद उसे दूसरी श्रेणी मिली है। सृंजय को ढूंढती हूं पर कहां है सृंजय?

भीड़ को धकेलती हुई आगे बढ़ती जाती हूं। अधिकांश कैन्डिडेट ही अपने साथ किसी न किसी को लेकर आए हैं। या तो मां या बाबा या फिर परिवार में से किसी और को। मेरी मां की भी बहुत इच्छा थी आने की, पर क्या करे कुछ दिन से उसे बहुत बुखार आ रहा है। मैंने मना किया। आज तो केवल परिणाम का दिन है। असली बात तो मार्कशीट वाले दिन की है। उस दिन मां को लेकर आऊंगी।

"हमारा नोटिस बोर्ड बहुत ऊंचाई पर है। उस पर तेज लाईट का रिफ्लेक्शन कांच पर पड़ रहा है। स्पष्ट कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है।"

"बोलो बोलो, अपना रोल नम्बर बोलो। मैं देख कर कहता हूं।"– एक जन बोल उठा।

"एफ एच ए थ्री टू सेवन वन।"

"एफ एच थ्री टू, फिर क्या कहा?"

"सेवन वन"

"सेवन वन, सेवन वन, ये रहा सेवन टू। नहीं सेवन वन तो नहीं है।"

"क्या कह रहे हैं? एफ एच ए थ्री टू सेवन वन देख नहीं पा रहे हैं क्या?"

"मैं हट जाता हूं तुम ही देख लो। माई गर्ल।"

मेरे पांव के नीचे की जमीन अचानक सागर तट की रेत बन जाती है। रेत हटती जाती है, हटती जाती है, मेरा रोल नम्बर नहीं, नहीं है। सचमुच नहीं है? ऐसा क्यों, ऐसा नहीं हो सकता है।

''ऐसा कैसे हो गया? पर... मैं... मेरे साथ ऐसा ही हुआ है? ऋतुपर्णा मजूमदार... मेरा... रोल नंबर नहीं है?''

मेरे दोनों ओर से समुन्दर की रेत की तरह भीड़ फिसलती चली जा रही है। मैं अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर अपना रास्ता खुद बना लेती हूं। कुछ नजर नहीं आ रहा है पर रास्ते पर कदम सही पड़ रहे हैं। आंखें भर आई हैं क्या? नहीं, नहीं ऐसा नहीं है। केवल एक धुंधलापन भर आया है। जो इस सुबह की वेला में नहीं होना चाहिए। लगता है धड़कनें थम गई हैं। मेरा हृदयपिंड भी देवलिना और सृंजय के जैसे छिटककर दूर भाग जाना चाहते हैं।

रास्ता... रास्ता... बहुत देर के बाद लगा कि मैं रास्ता पार कर रही हूं। जेब्राक्रॉसिंग! एक यंत्र के जैसे आकर खड़ी हो गई हूं। एक यंत्र की तरह रास्ता पार कर रही हूं। मैं किस ओर जा रही हूं? मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। ये कैसी गली है हमारी? बहुत दूर है। अगर मैं यहां तक पहुंच गई हूं तो आगे तक जरूर चली जाऊंगी। मैं कुछ सोच नहीं रही हूं केवल चलती जा रही हूं। चलती जा रही हूं। मेरे हाथ में ये क्या है? शायद इसे पर्स कहते हैं। इसमें क्या रहता है? रुपया–पैसा। रुपया पैसा मतलब क्या? कितने पैसे में कितना रुपया होता है? कितने रुपये में कितने पैसे होते हैं?

अरे! इस घर को तो मैं पहचानती हूं। ऊंची इमारत है। शायद दस मंजिला। तुम दस तक गिनना जानती हो ऋतु जो तुमने दस मंजिला कहा? अच्छा गिनकर देखो तो। लिफ्ट में नहीं जाना है। मैं गिनते हुए चढ़ूंगी। याद आया कुछ–कुछ, गिनते हुए कुछ लोग गए थे न?

धीरे–धीरे चढ़ रही हूं मैं। क्या यही मेरा घर है? नहीं तो! शायद ये मेरा घर नहीं है। पर मैं यहां आती रहती हूं। रोज नहीं आती हूं। शनि–मंगलवार को ही आती हूं। शनि मंगलवार इन सब का क्या मतलब होता है? ये रहा पीतल के नेमप्लेट वाला दरवाजा। अच्छा ये तो फिर वही गणित और फिजिक्स के सर का घर है। अभी दरवाजा खुल जाएगा। सर चश्मा साफ करते हुए पूछेंगे...।

मैं ऊपर की ओर दौड़ने लगी। इतनी देर के बाद मेरे शरीर में गति आई है। दौड़ते हुए मैं छत पर एकदम किनारे चली जाती हूं। फिर अपने को हवा में उछाल देती हूं। हे शून्य मुझे अपनी गोद में ले लो।

और उस समय जब वापस लौटने का कोई उपाय नहीं, तब पृथ्वी अपने सारे ऐश्वर्य उस लड़की को प्रदान कर देती है। अपनी संपूर्ण सत्ता के साथ सब दे देती है।

धूप, शायद जीवन में आज उसने पहली बार देखा। धूप में सिंकी हवा को पहली बार अनुभव करती है। घूम फिर कर घर, मैदान, गाय, भैंस, आदमी सब कुछ... यही सबसे जरूरी है। परीक्षा के परिणाम नहीं। पेड़ों को भी देखती है। एक कनेर का पेड़, तीन बोटल पाम। सब एक जात के हैं। प्रागैतिहासिक काल से इनके साथ उसके संबंध हैं। सौ फूट की ऊंचाई से गिरते समय हृदय में मध्याकर्षण के प्रभाव के कारण हवा का जोर दबाव होने पर भी ग्यारह मंजिल की सातवीं तल के लिंटर पर दो कबूतरों के गले के कोमल मयूरकंठी रंग को भी उसने देखा। और तुरंत वैशाली या रौनक का नहीं अपने चेहरे की ही सुन्दरता को केवल एक बार आईने में देखने के लिए उतावली हो उठी।

ये सभी भग्न मुहूर्त की एक झलक मात्र है। केवल मात्र एक बोध है। पर ये बोध भी इतना अद्‌भुत है कि इसके लिए जीवन भी दिया जा सकता है। पर मुश्किल यह है कि जीवन के चले जाने पर बोध का भी कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

कहानी

आखिरी निर्णय

महेन्द्र नारायण पंकज

देवदत्त साह जहां कहीं भी जाता, दहेज की ऊंची बोली के आगे टिक नहीं पाता। जब कभी वह बरतुहारी से लौट कर घर आता तो उदास–हताश–सा दिखाई पड़ता। दिन–रात बेटी की शादी की चिंता से वह परेशान रहने लगा। बहुत प्रयास के बाद उसने एक जगह अपनी बेटी के लिए शादी तय कर सगाई भी कर दी।

शादी भी हुई लेकिन अनमेल। शादी में गांव की जो भी बूढ़ी महिलाएं वर देखने आतीं, देवदत्त को थू–थू कर कहने लगतीं–

'दुनिया में लड़का नहीं मिला था। गेहूं में मरूआ मिला दिया है देवदत्त। कहां गोरी बेटी, हृष्ट–पुष्ट, भरा–पूरा शरीर, चांद सा चेहरे वाली सीता, कहां कलूटा लड़का?'

सोलह फूलों वाली सलोनी सीता के भी बहुत सारे अरमान थे। सुन्दर पति, अच्छा घर, सुखी–संपन्न परिवार में अच्छे लड़के से शादी होती। आज लड़के की खरीद–बिक्री का काम पहले से ज्यादा चल रहा है।

गांव में देवदत्त की बेटी सीता के विवाह की चर्चा समाप्त हो गई। कुछ दिनों के बाद सीता भी ससुराल में ही रहने लगी। पक्की सड़क से दूर नदी के किनारे बसा गांव वर्षा के दिनों में नदी की बाढ़ से पानी घर–घर जाता था। भर बरसात नर्क का जीवन। एक तो गरीबी में जीना मुश्किल हो गया था, दूसरी तरफ बाढ़ के पानी में रहना भी कठिन लग रहा था। पति अपनी पढ़ाई में लगा था। ससुर खेती–बाड़ी करते लेकिन गुजर–बसर के लायक भी अन्न पैदा नहीं हो पाता। उसे कभी भूखे सो जाना पड़ता था। देवी–देवता की पूजा में लगी रहती, कहीं सुख के दिन फिर जाएं तो जीवन चैन से कटे।

संयोग भी ऐसा हुआ–पति मुनींद्र ने बीए पास कर ऑफिस में किरानी का काम प्राप्त कर लिया। पति को जिस दिन सरकारी नौकरी मिली, तो पत्नी सीता को काफी खुशी हुई थी। कई वर्षों बाद मुख की गायब हंसी लौट आई थी। उसकी सास तकलीफ के दिनों में धैर्य बंधाया करती थी–

'दुल्हिन! चिंता मत करो सुख के दिन लौटेंगे।' सो सुख के दिन लौट ही आए।

सीता के पति मुनींद्र उसे अपने पास ले गए थे। दोनों साथ–साथ रहने लगे थे। घर में टीवी, बिजली, पंखा सभी उपलब्ध थे। इसी बीच सीता को लड़का भी पैदा हो गया था।

घर में प्रत्येक दिन अखबार आता था। समय निकाल कर सीता अखबार अवश्य देख लेती कि जिससे उसका मन भी बदल जाता और दुनियादारी की खबरें भी जान लेती। एक दिन उसने अखबार में पढ़ा कि किशनगंज के मजिस्ट्रेट ने पत्नी को प्रताड़ित करने के अपराध में पति को कैद की सजा सुनाई है। इस समाचार से सीता को नई रोशनी मिली। उसकी हिम्मत बढ़ी। उसने जुल्म का विरोध करने का निश्चय किया।

नौकरी मिलने के बाद भी पति हृष्ट–पुष्ट नहीं हो पाए। उसे ग्लानि भी होती थी। कभी–कभी पत्नी कह उठती, 'आप का स्वास्थ्य सुधर नहीं रहा है।'

जीवन में आई थोड़ी खुशहाली सीता के मध्यवर्गीय परिवार को

जगाने लगी थी। सिनेमा, टीवी उपभोक्तावादी–प्रवृत्ति और फिल्मों का प्रभाव उसकी सोच को बदलने लगे थे। घर में पड़ोस के युवकों का आना–जाना देखकर मुनींद्र का क्रोध भड़क उठता और अपनी पत्नी को डांट लगाता। लेकिन पत्नी का यह सिलसिला बंद नहीं हुआ। एक दिन मुनींद्र के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसने सीता को कमरे में बुलाकर पीटना शुरू कर दिया। सीता जोर–जोर से रोने लगी थी।

अड़ोस–पड़ोस की औरतें जमा होने लगीं। सीता बेजार रोए जा रही थी और कह भी रही थी–'मां बाप पाल–पोस कर इसलिए मर्द के साथ कर देते हैं कि वह माल–जाल की तरह पिटाई करें।'

पड़ोस की एक महिला दौड़ती हुई आई और पूछने लगी थी–'दीदी किस राक्षस ने पीटा है तुमको', 'पिटेंगे कौन जिसकी दासी बनी हुई हूं? दूसरा पीटनेवाला कौन है? उस मुंहझड़का को तो जिन्दा चबा जाऊंगी।'

'क्या हुआ था दीदी कि वे पीटने लगे थे?'

''कुछ नहीं हुआ था, ऐसे ही जब कभी बाहर से प्रणय के पापा जी आते हैं उनका मन चढ़ा ही रहता है। यदि मुझसे कोई गलती होती है? तो मुझे माल–जाल की तरह पीटेंगे। मैं भी तो मनुष्य ही हूं। गलती पशु से नहीं होती है क्योंकि उसके पास विवेक नहीं है। मनुष्य से तो गलती होती ही है। क्या वे गलती नहीं करते हैं कभी भी?'' सीता रोती हुई बोलने लगी थी।

सभी महिलाएं उदास होकर अपने–अपने घर चली गईं। मुनींद्र का शंकालु मन सीता से दूर होता गया। सीता सीधी–सादी महिला थी। मुनींद्र को लगा कि सीता के हृदय में दाग है। इसलिए वह इस तरह अप्रिय बात बोल रही है। मुनींद्र का क्रोध भड़क उठता।

बात–बात में पति द्वारा पिटाई होने से वह टूटती चली गई। बेसहारा होकर वह मौत को गले लगाने की बात सोचने लगी लेकिन दूधमुंहे बेटे का मोह उसे आत्महत्या करने से रोक देता।

घर में प्रत्येक दिन अखबार आता था। समय निकाल कर सीता अखबार अवश्य देख लेती कि इससे उसका मन भी बदल जाता और दुनियादारी की खबरें भी जान लेती। एक दिन उसने अखबार में पढ़ा कि किशनगंज के मजिस्ट्रेट ने पत्नी को प्रताड़ित करने के अपराध में पति को कैद की सजा सुनाई है। इस समाचार से सीता को नई रोशनी मिली। उसकी हिम्मत बढ़ी। उसने जुल्म का विरोध करने का निश्चय किया।

अब वह पति को किसी बात पर करारा जवाब देने लगी थी। जुल्म सहते–सहते वह ढीठ और मुंहफट हो गई थी। एक दिन जब उसके पति ऑफिस चले गए तो उसने थाना में अपने पति के द्वारा प्रताड़ित किए जाने का आवेदन–पत्र दे दिया, तो मुंशी बोल उठा,

'पगली कहीं की।'

संपर्क

साहित्य निकेतन, भतनी

थाना–कुमारखण्ड, जिला–मधेपुरा

बिहार–852112

मो. : 09470289807

सूचना

रमणिका फाउंडेशन से किताबे मंगवानी हों तो कृपया उसकी राशि

आई.सी.आई.सी.आई. बैंक के

खाता सं. 630001023163 **IFSC Code :** ICIC0006300 में जमा करके,

जमा राशि की रसीद स्कैन कर के ईमेल : ramnika01@gmail.com पर भेजकर

टेलीफोन नं. 011–46577704, 011–46577705 पर सूचित करें।

कृपया फोन 12 बजे दिन से संध्या 6 बजे के बीच करें।

लघुकथा

डायन

विद्यालाल

दशहरे में गणेश कलकत्ते से बीवी–बच्चों समेत आया था। बूढ़े माई–बाबू, भाई–भावजें, भतीजे–भतीजियां सभी खुश थे कि तभी गणेश की खुशियों को ग्रहण लग गया। रात भर उल्टी और दस्त के बाद उसका एकलौता बेटा राजू चल बसा। शहर ले जाकर इलाज कराने की मोहलत भी नहीं मिली। गणेश का बड़ा भाई बसमतिया को पकड़ लाया था और लात–मुक्कों से उसकी पिटाई करने लगा था–''मारो इसी को मारो! हमार सुख इससे देखा नहीं गया। इसी ने हमारे भतीजे को खा लिया।''

गांव के बड़े–बूढ़े, दरवाजे पर जुट आए थे। जिसका भी मन हुआ था लात–घूंसे और गालियों की बरसात कर रहा था। थककर महेश चिल्लाया था–''गनेशिया मैला घोलकर पिलाओ। हजाम बुलाकर इसका माथा मूंड़ो, चूना पोत कर घुमाएंगे। ऐसे नहीं छोड़ेंगे।'' गणेश पत्थर की मूरत बना बैठा था। सामने मृत बेटे की लाश थी और पछाड़े खाती पत्नी फूलेसरी। मैला घोला जा चुका था। हजाम आ चुका था। जमीन पर पड़ी बसमतिया की अवाज धीमी पड़ती जा रही थी–''हम कुछ नहीं किए हैं। हमको छोड़ दो। बऊआ को हम गोद में खिलाए हैं।''

लोगों ने जैसे ही उसे पकड़कर उठाया वो जोर से चीख पड़ी–''कनिया हमको बचा लो। हम कुछ नहीं किए हैं कनिया''। रोती–बिलखती फूलेसरी एकदम से उठकर खड़ी हो गई थी–''छोड़ दीजिए काकी को... हमारा नसीब में बेटा नहीं था। इसमें काकी का कोई दोष नहीं है।''

''तुम चुप रहो। ये डायन है। यही खाई है।'' हमेशा चीखा।

''लेकिन हम नहीं मानते हैं काकी डायन हैं। अगर काकी सच में डायन हैं तो इनसे डरिए भाई जी। हम तो कुछो नहीं किए तो हमारा बेटा खा गईं। आप मैला पिलाएंगे, गांव में घुमाएंगे तो आपसे रोष ही होगा। तब आपको भी खा जाएंगी। इनमें तो 'ताकत' है न? आदमी को खाने का? तो आप डरते क्यों नहीं? इतना समझ नहीं है कि काकी में 'खाने का ताकत' होता तो सब मारने वाले को खा जातीं। कोई नहीं बचता। कोई नहीं। छोड़ दीजिए काकी को। निरपराध पर जुलूम मत करिए।'' फुलेसरी के आंसू बहे जा रहे थे।

बसमतिया काकी पर पकड़ ढीली हो गई थी। वो फूलेसरी के गले लगकर फफक–फफक कर रो रही थीं। लोगों में फुसफुसाहटें बढ़ गई थीं।

संपर्क
अशोक नगर
रोड़ नं0. 1 एफ
पटना–800020
मो. : 09162619636

अश्वेत कवयित्री

ग्वेंडोलीन एलिज़ाबेथ ब्रुक्स

अनुवाद : विपिन चौधरी

7 जून 1917 को टोपेका, केंसास, संयुक्त राज्य अमेरिका में जन्मी अश्वेत कवयित्री ग्वेंडोलीन एलिज़ाबेथ ब्रुक्स का नाम पुल्तिज़र पुरस्कार प्राप्त पहली अश्वेत कवयित्री के तौर पर इतिहास में दर्ज़ है। 1950 में उन्हें उनके दूसरे कविता संग्रह 'एनी एलन' के लिए पुल्तिज़र पुरस्कार प्रदान किया गया था। उनकी कविताओं में अपने अश्वेत होने पर आत्मदया को दर्शाने का प्रयास नहीं है बल्कि अपने लेखन में वे वास्तविकता को ईमानदारी के साथ प्रतिपादित करते हुए समाज पर कटाक्ष करती हैं। ब्रुक्स को दुनिया भर के कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की ओर से 75 से अधिक मानद डिग्री दी गई हैं। 83 साल की उम्र में सन् 2000 में ब्रुक्स का कैंसर से निधन हुआ।

1. हम मस्त लोग

गोल्डन शॉवेल पर सात पुल खिलाड़ी

वाकई हम मस्त हैं

हम स्कूल को त्याग देते हैं

हम छिपे रहकर इंतजार करते हैं

हम गुनाह को गुनगुनाते हैं

हम दुबली मदिरा हैं

हम जून महीने में बजने वाली जैज़ हैं

हम शीघ्रता से मर जाने वाले लोग हैं।

2. रॉबर्ट फॉस्ट के वास्ते

उनकी आंखों में रोशनी की महीन सी चमक है

जबान पर है लोहा

उनकी भौहें बहुत ऊपर या बहुत नीचे नहीं हैं

खड़े होने के स्थान समेत वे भव्य हैं

उनके सामान्य लहू में कुछ देदीप्यमान है

उनमें कुछ खास है।

अनुवादक का संपर्क
मो.: 9899865514

सूरजपाल चौहान

जाटव नहीं वाल्मीकि था वह

क्यों भंग करने में लगे हो
साहित्य के नाम पर दलितों की एकता

क्यों हो 'बेचैन'
हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से?
सतनामी (जातिवादी) चुनरिया ओढ़े
अपने–अपने लेखों/आलेखों से
क्यों नकारने में लगे हो अस्तित्व हीरा डोम का?
आखिर
एक ही कविता 'अछूत की शिकायत'
लिख कर
पा गया वह स्थान साहित्य में प्रथम दलित कवि का
इसी से हो उठे परेशान, हैरान और कुंठित
तुम
तुम क्यों भूल गए
एक ही लेख लिखा था अपने जीवन में
शहीदे आजम ने–
'मैं नास्तिक क्यों बना?'
मैं भी तो वर्षों से
लिखता रहा हूं 'शिव–स्तुति'
गाता रहा हूं भजन मंदिरों में।
क्या नकारोगे मेरा अस्तित्व आने वाले समय में
यह कह कर कि
'जाटव नहीं, वाल्मीकि था वह?'

दोहे

शोषित के आक्रोश को, हलका मत तू जान।
आग लगा दे तंत्र में, पहुंचा दे शमशान।।

हरिहर जी औ' डोम ने, खोजी निज पहचान।
इनके ही बूते मिला, दलितों को सम्मान।।

ना कुछ तीर्थ में धरा, ना कुछ चारों धाम।
सारा कुनबा खो गया, फिर भी मिला न राम।।

गप्पी वह साहित्य है, कलुषित है इतिहास।
मानवता को छोड़ जो, गढ़े अन्ध–विश्वास।।

एकाकी जीवन जिया, हरदम रहा उदास।
जग मुझको ठगता रहा, देकर झूठी आस।।

दलितों के जीवन पड़ी, जाति–दंश की मार।
गोले–सी गाली लगी, खड्ग बनी दुष्कार।।

ऊंच–नीच के रोग से, पीड़ित अब भी देश।
कदम–कदम पाखंड है, मन के भीतर द्वेष।।

तू प्रपंची है बड़ा, ओ ढोंगी अवधूत।
धरम–करम के नाम पर, खूब मचाई लूट।।

इक दिन बनकर देख ले, भंगी और चमार।
चूर–चूर हो जाएगा, हमदर्दी का व्यवहार।।

मठ, मन्दिर के फेर में, है तेरी मति भंग।
भीमराव को भूलकर, बजा रहा मृदंग।।

सब वीरों में वीर तू, मातादीन महान।
स्वतंत्रता–संग्राम में, निकला सीना तान।।

तू बर्बरीक महान है, इकलव्यी तू तीर।
अपना दीपक आप बन, तम को दे तू चीर।।

तेरे किसना, राम को, पूजा है दिन–रात।
फिर भी मैं चंडाल हूं, तू है अति–अभिजात।।

छल–बल से बुधिया लुटी, प्रेमचंद फिर जांच।
जात–पात की आड़ में, मत भूलो तुम सांच।।

अध्यात्म से जोड़कर, बाबा का गुणगान।
पोंगा–पंडित कर रहा, सरे–आम अपमान।।

अधिकारी बनकर लिया, ब्याह बामनी संग।
भीम की शिक्षा भाड़ में, अब मैं मस्त–मलंग।।

पांच मिनट की स्वच्छता, थक कर नेता चूर।
मैंने पूछा जानकर, कैसा लगा हजूर।।

दांत निपोरे हंस दिया, पटकी झाड़ू दूर।
भवें तान ढोंगी मुझे, रहा देर तक घूर।।

तेरा चिंतन और है, मेरा है कुछ और।
तू संन्यासी संग है, मैं सद्गुरु की ठौर।।

जातिवाद यदि टूटता, बाबा देते तोड़।
धर्म बदलने के लिए, न मचती फिर होड़।।

संपर्क

सी–130 ए, सेक्टर–20, नोएडा–201301 (उ.प्र.)

मो. : 09711196855

कविता

सुरेश कुमार निराला

अभी तो सिर्फ व्यथा सुनाई है

भारतीय दलित–आदिवासी साहित्य
अब मजबूत बीज के रूप में
अंकुरित हुआ है
अंकुरित होने के बावजूद इसे सदियों से
दुत्कारा, तिस्कारा ही नहीं
सैकड़ों बार लहुलूहान किया गया है
इस अंकुर को पनपने से पहले ही
तोड़–मरोड़ दिया गया
यह साहित्य का अंकुर
ऐसी ही स्थिति में अपने को
और मजबूत करता रहा धीरे–धीरे
कि इतना मजबूत हो गया है वह
कि अब बार–बार प्रहार करने के बाद भी
आगे बढ़ने की स्थिति में हो गया है यह
यह अंकुर अब अपना अस्तित्व ग्रहण कर चुका है
इस पर प्रहार करने वाला हाथ
थक चुका है अब उसे दर्द भी होने लगा है
इस दर्द का कारण एक नहीं, अनेक है
अभी तो हमने सिर्फ अपनी व्यथा सुनाई है।
अभी जवान भी नहीं हुए हैं हम
अभी तो प्रेम करना, मुस्कराना और घर बसाना बाकी है
बच्चे पैदा करना और उनमें नए संस्कार डालना बाकी है
और बाकी है दुनिया को मधुर–संगीत सुनाना
अभी तो हमने आत्मकथा,
कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध और
पत्र–पत्रिकाएं निकालनी शुरू की हैं
अभी तो हमें अपना इतिहास लिखना बाकी है
चाहे वह 'दलित–अस्मिता' हो,
चाहे हो 'युद्धरत आम आदमी'
चाहे वह 'आदिवासी–सत्ता' हों,
चाहे हो वह 'अरावली–उद्घोष'
या 'बयान–पत्रिका'
आपका 'दलित–दस्तक'
या भारतीय दलित–आदिवासी साहित्य के पक्ष में
लिख रहीं अन्य पत्रिकाएं
अभी तो हमने, इनके माध्यम से
बोलने की शुरुआत ही की है
अभी तो बहुत सी बातें करना बाकी हैं।

संपर्क

शोधार्थी
सी–18, बशीर पुरुष छात्रावास,
अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय,
हैदराबाद–500007, मो.: 08978238147

विशिष्ट कवि

रमेश ऋतम्भर

मृत्यु–दौड़

(दरोगा की नौकरी की दौड़ में हताहत
युवाओं की स्मृति में)

वह दौड़ रहा है
वह पूरी जान लगाकर दौड़ रहा है
पैर लड़खड़ा रहे हैं
कंठ सूख रहा है
आंखों से चिंगारियां निकल रही हैं
फिर भी किसी अदृश्य शक्ति के सहारे
वह लगातार दौड़ रहा है
उसकी आंखों में बूढ़े पिता का थका, झुर्रीदार
चेहरा कौंध रहा है
उसकी आंखों में बीमार मां की खांसती हुई
सूरत झलक रही है
उसकी आंखों में अधेड़ होती कुंवारी बहन का
उदास मुखड़ा तैर रहा है
उसकी आंखों में दारोगा की वर्दी में वह
खुद ही खड़ा दिखाई दे रहा है
उसकी आंखों में लक्ष्य–रेखा करीब आती
नज़र आ रही है
उसकी आंखें धीरे–धीरे मुंदती जा रही हैं
सारा दृश्य एक–दूसरे में गड्मड् हो रहा है
अब उसे कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा
वह दौड़–भूमि में भहरा कर गिर पड़ा
और उसकी चेतना धीरे–धीरे लुप्त होती जा रही है
मां–पिता, बहन, भाई और सब दोस्त
एक–एक कर याद आ रहे हैं
जैसे उसकी चेतना में लक्ष्य–रेखा धंस गई है
कि वह अपने को लगातार दौड़ते पा रहा है
उसके प्राण–पखेरू उड़ चुके हैं
अब वह अपनी मृत्यु में दौड़ रहा है
वह लगातार दौड़ रहा है...

वह दौड़ रहा है
उसके साथ कई–कई इच्छाएं दौड़ रही हैं
वह दौड़ रहा है
उसके साथ कई दुख दौड़ रहे हैं
वह दौड़ रहा है
उसके साथ कई उम्मीदें दौड़ रही हैं
वह दौड़ रहा है
उसके साथ एक समाज का भविष्य दौड़ रहा है
वह कोई अकेले नहीं दौड़ रहा।

आजकल मैं दुश्चिन्ताओं से घिरा रहता हूं

आजकल मैं न ठीक से कुछ सोच पाता हूं
न ठीक से मैं कोई सपना देख पाता हूं
न ठीक से कोई कविता लिख पाता हूं
आजकल न ठीक से मैं दोस्तों से बतिया पाता हूं

न ठीक से मैं पत्नी से प्यार कर पाता हूं
न ठीक से मैं बच्चों को दुलार पाता हूं
आजकल हमेशा मैं एक अजीब हड़बड़ी में
रहता हूं हमेशा मुझ पर एक भय तारी रहता है
कि तेज़ी से बदलते–भागते इस समय में
कहीं मैं पिछड़ न जाऊं गिर न जाऊं
मारा न जाऊं
आजकल हमेशा मैं
दुश्चिन्ताओं से घिरा रहता हूं
किसी के सपने में मेरा सपना शामिल है
किसी की भूख में मेरी भूख
किसी के प्यार में मेरा प्यार शामिल है
किसी के सुख में मेरा सुख
इस दुनिया में करोड़ों आंखें, करोड़ों पेट
और करोड़ों हृदय ऐसे हैं
जो एक समान एक भूख और एक प्यार लिए
जीते हैं और मर जाते हैं
उन्हीं के बयान में मेरा बयान शामिल है
उन्हीं के दुख में मेरा दुख...

एक पिछड़े हुए आदमी की कथा

कभी वह
किसी अंधे को सड़क पार कराने में लग गया
तो कभी किसी बीमार की तीमारदारी में जुट गया
कभी वह किसी झगड़े के निपटारे में फंस गया
तो कभी मुहल्ले में लगी आग बुझाने में रह गया
और कभी कहीं अपने हक–हकूक की लड़ाई लड़ रहे
लोगों के जुलूस में शामिल हो गया
और अन्ततः वह दुनिया की घुड़दौड़ में पिछड़ता
चला गया...।

अपने शहर पर

अपने शहर पर कभी–कभी बहुत गुस्सा आता है
जहां हर कोई हर किसी के बारे में बेमतलब जानकारी
रखता है
हर तीसरा व्यक्ति रोक कर पूछता है
'आजकल क्या कर रहे हो?'
(जबकि उसे सामने वाले से कोई सहानुभूति नहीं
होती)
हर किसी के पास बहुत–सा खाली समय होता है
हर कोई हर दूसरे की प्रगति से जलता है
कभी–कभी मुझे अपने शहर पर गुस्सा आता है
हर कोई हर किसी में अनावश्यक दिलचस्पी लेता है
हर कोई हर किसी के खाने–पहनने के ढंग पर
सवाल करता है
हर किसी की बात सुनते–सुनते
आदमी के कान पक जाते हैं
'लोग क्या कहेंगे' में ही
हर किसी का जीना मुहाल हो जाता है
सचमुच अपने शहर पर कभी–कभी
बहुत गुस्सा आता है।

कर्जदार

मेरा रोम–रोम लोगों का कर्जदार है
घनघोर बारिश में पानी में डूबी सड़क पर
मुझे गंतव्य तक पहुंचाते उस अनाम रिक्शेवाले का
जिसका किराया मैं चुका नहीं पाया
उस अनजान राहगीर का
जिसने सफर में बुखार से बेहोश
मुझे सहारा देकर घर तक पहुंचाया
उस अजनबी दुकानदार का

जिसने महानगर में भटकते देख मुझे
मेरे दोस्त के घर का रास्ता बताया
उस बेनाम चायवाले का
जिसने मुझ प्यासे को प्यार से पानी पिलाया
उस अपरिचित दम्पति का
जिसने तेज़ बारिश में भीगते हुए मुझे
अपने घर में शरण दी
मेरा रोम–रोम मिट्टी, हवा, धूप, पानी के साथ–साथ
उन अनाम–अजनबी लोगों का
शुक्रगुजार है
जिनका चाहकर भी
मैं कभी कर्ज चुका नहीं सका

पांच दोस्त

उसने खोल लिया एक छोटा–मोटा प्रेस
और हो गया क्षेत्रीय अखबार का
स्थानीय सम्पादक
आजकल वह मुर्गे की टांग और शराब की बोतल पर
खबरों का महत्व तय करता है
पांचवां जो किताबों की दुनिया में खोया
देखता था क्रांति के सपने
हो गया एक छोटे कॉलेज में
हिंदी का लेक्चरर
वह अपनी सीमित तनख्वाह में
घर–परिवार व पेशे की जरूरतों के बीच
महीने भर खींचतान करता है
अपने को जिंदा रखे रहने के लिए
कभी–कभी कविताएं लिख लेता है
आजकल वह भी सोच रहा है
कि वह भी खोल ले कोई दुकान
या बन जाए किसी का दलाल।

इसी दुनिया में

(जिन्होंने अपने प्यार से बचाए रखा, उनके लिए)

मेरा होना
इसी दुनिया पर निर्भर करता है
इस दुनिया के बाहर नहीं
जब मैंने आंखें खोलीं
तब
किसी दूसरे की गोद में अपने को पाया
दूसरे के ही हाथों मेरी नाल कटी
दूसरे के ही हाथों
मेरा जातकर्म–संस्कार हुआ
मैं अपनी मां के दूध पर नहीं
दूसरों के दूध पर पला
दूसरों ने ही मुझे चलना सिखाया
मुझे स्लेट पर लिखना
जिस मास्टर ने सिखाया था
उसका भी मेरे कुल–गोत्र से कोई सम्बन्ध नहीं था
अपनी जिन्दगी के सबसे कठिनतम दिनों से
जब मैं गुजर रहा था
तब मुझे दूसरों ने ही सहारा दिया था
दूसरों ने ही मिटाई थी मेरी भूख–प्यास
मेरे होने में
दूसरों के प्यार, पानी और प्रार्थना का हाथ है
मेरा कुछ नहीं
मेरा होना
इसी दुनिया पर निर्भर करता है
इस दुनिया के बाहर नहीं।

कहां से लाऊं लोहे की आत्मा

एक छोटी–सी गलती पर
मेरा कलेजा कांपता है

एक झूठ पर मेरी जुबान लड़खड़ाती है
एक छोटी–सी चोरी पर
मेरा हाथ थरथराता है
एक छोटे–से छल पर मेरा दिमाग गड़बड़ा जाता है
कैसे कुछ लोग
बड़ा–सा झूठ
बड़ी–सी चोरी
बड़ा–सा छल कर लेते हैं
और जरा–भी विचलित नहीं होते
क्या उनका कलेजा पत्थर का है
या आत्मा लोहे की?
अब मैं कहां से लाऊं लोहे की आत्मा
या कैसे बनाऊं पत्थर का कलेजा?

संपर्क
योगेन्द्र भवन,
दूसरी मंजिल, पुराना पेट्रोल पंप के निकट,
आमगोला, मुजफ्फरपुर–842002
मो.: 09431670598

कविता

मजीद अहमद

बांस पत्तियां और चांदनी

(सुरजीत अकरे की चित्र–कृति देखकर)

(1)

जैसे–जैसे हवा चलती है बांस–वन बोलता है
बांस पत्तियां डोलती हैं कि बहती है पछुआ
गहराते हुए अंधेरे को चीर चन्द्रकिरणें
हरियल पत्तियों पर थिर होने से पहले
धरती पर गिर–गिर पड़ती हैं

(2)

बांस–पत्तियों पर आ–ठहरी धवल चांदनी
पारे–सी लगती है
ज्यों पारा
कि पत्तियों पर टिकता ही नहीं वह
हिलकोर लेता है वह अब–तब
कीट–पतंगों की छुवन से
झींगुर की आवाज़ से और
कभी–कभी बकरे की अनमनी सांस से।

(3)

विरल बांस पत्तियां
चौथ के चंद्रमा की ओर मुंह करके
कानाफूसी कर रही हैं
कि बीत चुका दिन कैसा था?
कि यह निगोड़ी रात कैसी होगी?
निर्जन में दूर कहीं
बाघ के डकारने की आती है आवाज़!

संपर्क
मो. : 9971425649

दलित कविता

सुमित्रा महरौल

कहानी बहुत पुरानी है

कहानी बहुत पुरानी है
एक कौव्वे की जिसे मोर का पंख मिला
या कौन जाने उसने अपने लिए जुटा लिया
उसे अपनी पूंछ में सजा,
वह जा पहुंचा मोरों के बीच
उसे देख मोर कनखियों से बतियाने लगे
कब, किसने, कौन–सा पंख कहां गिराया
एक दूसरे से पूछने और बतलाने लगे।
ब्याहता मोरनियां तो दिन–रात थीं उनके ही साथ
वे अनब्याही और विधवा मोरनियों पर
क्रोध बरपाने लगे
हमारा एक पंख जुटा लेने से
तुम मोर नहीं हो जाते,
वे उस कौव्वे को उसकी जात बतलाने लगे
कौव्वा उदास हो गया
पर मोर–पंख का मोह
फिर भी उसके दिल से न गया
यूं ही उसे अपनी पूंछ में लगाए
वह कौव्वों के बीच आया
पर अफ़सोस कौव्वों ने भी उसे न अपनाया
मोर का पंख यहां भी उसके किसी काम न आया
कहानी बचपन की
यहीं खत्म हुई जाती थी
कि अचानक उसमें एक नया मोड़ आया...
ठाकुरद्वारे की कथा में सुना था मोरों ने
'कभी कौव्वों का भी दिन आएगा
हंस चुनेगा दाना तिनका कौव्वा मोती खाएगा'
बस तो फिर क्या था
एक मोर ने बड़े जतन से कव्वे का एक पंख जुटाया
उसे अपने सिर पर ताज़–सा सजा कर वह
कौव्वों की सभा में आया और
कब, कैसे वह कव्वे से मोर बना
यह सब इतिहास कह सुनाया
बात सही थी या नहीं
पर मोर का कव्वा बनना क्रांतिकारी था
उसका असर होना ही था
मोर, मोर भी रहा और
कौव्वा बनकर सराहा भी गया
संसार भर के कव्वो
मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना है
कव्वे से मोर बनना या मोर से कव्वा
कोई बड़ी बात नहीं है...
बड़ी बात है...
समझदारी से मक्कारी करना
या समझदार मक्कारी को कान से पकड़ना
पर मुझे पता है ये दोनों ही काम
तुम्हारे बस के नहीं हैं...

संपर्क
10, मिराण्डा हाउस, शिक्षक निवास
छात्र मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली–110007
मो. : 9650466938

कविताएं

डॉ. निशा भोंसले

मैला साफ करने वाला वह लड़का

1

मैला साफ करने वाला वह लड़का
जब करता है साफ नालियां और सैप्टिक टैंक
बेझिझक अपने हाथों से
देखने वाले मुंह–नाक बंद कर लेते हैं
पर नहीं करता वह बंद अपना मुंह–नाक
लेता है वह स्वच्छन्द श्वांस
नहीं है उसे डर बदबू और बीमारी का
उसे मालूम है उसकी कमाई से ही
उसके घर का चूल्हा जलता है
बूढ़ी मां, छोटी बहन और बीमार भाई के लिए
पकती है रोटी

2

मैला साफ करने वाला वह लड़का
कभी–कभी सोचता है
जिस शहर को वह अपनी मेहनत से
साफ और सुंदर बनाए रखता है
उसी शहर की गंदी बस्ती में
उसे रहना होता है

चमारिन बाई

मैं देखती हूं उसे
अपने घर के आंगन से
वह आती है अलसुबह पड़ोस के फ्लैट में काम करने
वह करती है काम, लगाती है झाड़ू–पोंछा
मांजती है बर्तन, धोती है कपड़े
गूंदती है आटा
बनाती है रोटी और तरकारी
तैयार करती है बच्चों को और
छोड़ आती है स्कूल के लिए बस स्टाप पर
दोपहर में सुखाती है कपड़े
शाम को बनाती है चाय मालकिन के लिए
बाहर से सब्जियां भी ले आती है
जब वह लौटने के लिए मांगती है इजाज़त
मालकिन कहती है–
'कल जरूर आना, नागा मत करना
घर में पूजा है'
चमारीन बाई सिर हिलाती है
उसे नहीं है फिक्र
अपनी जाति और धर्म की।

संपर्क
शुभम विहार कालोनी बिलासपुर,
छ.ग. 495001

कविता

सीताराम शर्मा

धरती को बचा लो

कह रही है धरती मां 'अपनी धरती को बचा लो, बना लो जीने लायक
विकास की वहशी और अंधी भूख में
बना रहे हो तुम विध्वंस के ज़ख़ीरे
भूल कर मनुष्यता तुम चढ़ा रहे हो त्योरियां
दैत्यों की तरह
जल, जंगल, जमीन और पशु–पति सभी तो हैं
तुम्हारे रखवाले
एक बार बस तुम प्यार से इन पर
नजर तो डालो
अपनी धरती बचा लो'

संपर्क
अलकापुरी, रांची, झारखंड
मो. 0943151911, 09122043222

ग़ज़ले

विज्ञान व्रत

1

जाने क्या समझाकर वो गुज़रा है बहलाकर वो
हमको रोज़ डराता है अपने ख़्वाब सुनाकर वो

ख़ुद को अपने कंधों पर फिरता रोज़ उठाकर वो
मैं भी इक सच्चाई हूं रक्खे मुझे बचाकर वो

जिसका उत्तर मैं ख़ुद हूं देखूं प्रश्न उठाकर वो
मुझको लेकर सोचेंगे पर गूंगे क्या बोलेंगे

काग़ज़ कोरा छोड़ेंगे वो जब मुझको लिक्खेंगे
मैं अब उनकी आदत हूं वो मुझको क्या छोड़ेंगे

जिनसे मेरा झगड़ा है मेरे अपने निकलेंगे
जितना सुलझाओगे तुम रिश्ते उतना उलझेंगे

2

मुझको सच बतलाने देता फिर कितने ही ताने देता
और ज़रा मोहलत मिल जाती मैं कुछ और ज़माने देता

बंद घरों में रोशन–भर कर काश उजाला आने देता
ख़ुद से बात बनाए रखता सबको बात बनाने देता

मेरी महफ़िल में कम–से–कम मुझको तो आ जाने देता
किस–किसको बतलाता वो बात यही थी चुप था वो

झूठों के हमराही सब सच्चा था तनहा था वो
जब से ख़ुद को देखा है रहता है सहमा–सहमा वो

सबसे ऊंचा दिखना था उड़ता सिर्फ़ धुआं–सा वो
कितना बेघर लगता था जब घर में रहता था वो

संपर्क
मो. 09810224571

स्त्री की दुनिया

(अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस–8 मार्च पर विशेष)

सबसे पहले दूर करनी होगी सोच की गरीबी

स्वाति ठाकुर

आज विकास की चर्चा जोर–शोर से सुनती हूं। विकास हुआ भी है, मैं यह मानती हूं। पर, आज भी जब घर जाती हूं, तो मन खिन्न हो उठता है। ऐसा नहीं है कि वहां विकास हुआ ही नहीं है। जब भी जाती हूं, पाती हूं सड़कों पर पिछली बार से अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा महंगी–महंगी गाड़ियां, ऊंचे–ऊंचे मकान। पर, यह सब देखकर मन को उतनी खुशी नहीं मिलती, जितनी निराशा यह देखकर मिलती है कि वहां एक तरह का पिछड़ापन आज भी कायम है, पिछड़ापन भयावहता की हद तक। समस्याएं हर जगह होती हैं। दरअसल समस्या का होना उतनी बड़ी समस्या नहीं होती, जितना कि समस्या को सहज मान लेना। हमारे समाज की स्थिति भी इसी नाते बहुत विकट हो चली है, क्योंकि उन्होंने समस्याओं को सहज मान लिया है, अस्वीकार्य स्थितियों में नैतिकता का ह्रास हुआ है, स्त्रियों की स्थिति में, परिवर्तन इतने कम हैं कि दिखाई ही नहीं देते। जहां स्त्रियों को शिक्षा से दूर ही रखा जाता था वहां आज स्त्रियों को शुरूआती शिक्षा दी जा रही है, पर उसके बाद... एक बड़ा प्रश्नचिह्न, हम सबके सामने है।

हालांकि ऐसी स्थिति भी बनी हुई है कि स्त्रियां स्वयं भी, पढ़ाई–लिखाई और सामाजिक मुद्दों से कहीं ज्यादा गहनों, शिकायतों और दूसरों की चरित्रहीनता पर बात करने में अधिक रस लेती हैं। उन्हें अपने अधिकारों की चिंता ही नहीं है। उन्हें बस गहने और कपड़े दिला दो, वे खुश हो जाती हैं। स्थिति ऐसी है कि लोगों के पास कोई सार्थक काम ही नहीं है, उन्हें तो बस यह देखना है कि फलां लड़की किस लड़के के साथ घूम रही है, फलां लड़के ने फलां लड़की को गिफ्ट दे दिया, बस हो गई वह घोषित तौर पर चरित्रहीन। मन तब और भी क्षुब्ध हो उठता है, जब सुनती हूं कि अरे वो फलां लड़की हमेशा छत पर ही खड़ी रहती है, जरूर ताड़ती रहती है किसी को, सो भ्रष्टा है वह। सुधार की संभावना लिए मन तब और भी बैठ जाता है, जब बाहर पढ़ने को गए लोग भी लौट कर ऐसी ही बातें करते हैं कि फलां लड़की पूरी तरह से बिगड़ गई है, वह इतने सारे लड़कों के साथ घूमती है, चाय पीती है...। उन जगहों पर तो शायद ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता कि एक लड़की किसी लड़के के साथ सड़क पर खड़ी होकर चाय पीए। सोच की विकृति इस कदर है कि जो स्थिति प्रशंसनीय है, उन्हें भी गंदी नजरों से देखा जाता है। ताज्जुब होता है कि ऐसे समाज में जीते हैं हम...। पर इन स्थितियों के लिए दोष सिर्फ पुरुषों को नहीं दिया जा सकता। स्त्रियों ने स्वयं को इस कदर अनुकूलित कर लिया है कि अपनी झूठी संस्कृति में कि उन्हें अपना शोषण करवाना अपना कर्तव्य लगता है। बड़ी प्रसन्नता से पैरों में चलने की दिक्कत लिए एक स्त्री यह सुनाती है कि कैसे उसे उसके पति ने सोते से उठाकर गेहूं फटकने को कहा। शर्मसार हो उठती हूं मैं। लड़कियों के चुनाव की स्वतंत्रता, फैसले लेने की स्वतंत्रता पर तो बवाल खड़ा ही करता रहा है हमारा समाज। और यह बवाल सिर्फ पुरुष ही नहीं खड़ा करता, नैतिकता का लबादा ओढ़े स्त्रियां यह सुनकर गुस्सा

हो उठती हैं कि कोई स्त्री शादी के पश्चात् सिंदूर नहीं लगाती। उनके शब्दों में यह तो पागलपन है, सिंदूर क्यों नहीं लगाती? सिंदूर तो सोहाग की निशानी है और इतना ही फट पड़ती हैं वे जब एक विधवा स्त्री को बिन्दी लगाए देखती हैं। समाज में चर्चा को विषय बन जाता है। क्या किसी ने सोचा है कि सिंदूर यदि सुहाग की निशानी है भी, तो शादी स्त्री और पुरुष दोनों की होती है, फिर यह निशानी औरतों के लिए ही क्यों? वैधव्य का शाप सिर्फ स्त्री ही क्यों भोगे? क्यों वह अपने लिए और अपने हिसाब से नहीं सज सकती? क्यों उसे एक विवाहित तथा विधवा के रूप में चिन्हित होने की मजबूरी है? क्यों आखिर क्यों? उसका अपना अस्तित्व, उसकी अपनी जिन्दगी कहां है?

महिला दिवस पर नारे बहुत लगते हैं, भाषणबाजी भी बहुत होती है, बहुत सारी लड़कियां भी सज–संवर कर खुश हो लेती हैं, आर्थिक समृद्धि निश्चय ही बढ़ी है, पर, इस समस्या की जड़ 'सोच की दरिद्रता' है, इसे आर्थिक समृद्धि से दूर नहीं किया जा सकता। आर्थिक समृद्धि से बाहरी जगत को प्रकाशित किया जा सकता है, पर भीतर के अंधकार को खत्म करने के लिए वैचारिक समृद्धि की जरूरत है, जिसके लिए जरूरी है सड़ चुकी परंपराओं के अंधकूप से बाहर निकल सोच को विस्तारित करने की... और जब ऐसा हो सकेगा, तब महिला दिवस मनाने की जरूरत ही नहीं होगी। हर दिन समान रूप से स्त्री और पुरुष दोनों का होगा...

संपर्क

रूम नंबर–150

गोदावरी हॉस्टल

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

मो. 09958501193

युद्धरत आम आदमी
का अगला अंक
अप्रैल 2016

कहानियां

प्रियदर्शन, अरुण अभिषेक, नीरा परमार, बृजमोहन रवींद्र स्विप्नल प्रजापति, रामप्रकाश 'अटल', उमाकांत खुबालकर, श्रीकांत व्यास

कविताएं

रमणिका गुप्ता, अनामिका, तरन्नुम रियाज़ अमृता बेरा, भुपिन्दर कौर, जसविन्दर कौर बिंद्रा पापोरी गोस्वामी, हेसल सारू, शांति खलको सुकृता पाल कुमार, सुषम बेदी अनुप्रिया, विपिन चौधरी

साक्षात्कार

रोज केरकेट्टा

आलेख

जयदेव पांडे, राकेशरेणु, अनीता वर्मा, गजेन्द्र कुमार मीणा, डॉ.उषा बनसोडे, अमिताभ दीक्षित डॉ. रमेन्द्र, बलराम प्रसाद, सोनटक्के साईंनाथ धूलचंद मीणा

निकष

डॉ. लव कुमार, मनोज कुमार, डॉ. नीलम

साथ में सभी अन्य स्थाई स्तंभ

स्त्री की दुनिया

घरेलू हिंसा बनाम कानूनी ज्ञान

रेणुका

मानव सामाजिक प्राणी है। समाज के मानव परस्पर संबंधों व रिश्तों से जुड़े हैं। और इस जुड़ाव को बांधने में संवेदनाएं काम करती हैं। श्रेष्ठ समाज व बेहतर जिंदगी के लिए सबसे जरूरी चीज़ है–संवेदना। संवेदना ही मनुष्यता को विस्तार देती है। पारिवारिक सदस्यों में परस्पर संवेदनशीलता जितनी ज्यादा होगी, रिश्ते उतने ही गहरे और मजबूत होंगे। मनुष्य संवेदनशील हो, परिवार संवेदनशील हो और समाज संवेदनशील हो, तो काफी कुछ परेशानियां और दुःख खुद–ब–खुद खत्म हो जाएंगे। लेकिन हकीकत में ऐसा नहीं है। घरेलू हिंसा को लेकर जो ताजा सर्वेक्षण हुए हैं, उसने परिवारों को खासतौर से पति–पत्नी के रिश्तों में पैदा हो रही संवेदनहीनता की बड़ी खौफनाक तस्वीर पेश की है।

घरेलू हिंसा कोई नई चीज नहीं है। सदियों से यह भारतीय समाज में प्रचलित है। घर में कैद रह कर महिला तमाम जुल्म और ज्यादतियों को चुपचाप सह रही है। वह इसे अपने जीवन की नियति मान लेती है। पति को परमेश्वर मान सभी सितम सहती रहती है। इन सभी प्रकार की हिंसा को सहन करने के पीछे महिलाओं की दयनीय आर्थिक स्थिति को मुख्य कारण समझा जाता है। समाज में स्त्रियों को पशुओं के समान रखा जाता है। गोस्वामी तुलसीदास तक स्त्रियों के लिए एक पंक्ति लिख गए, जिसे सुना–सुना कर स्त्रियों को प्रताड़ित किया जाता है। उनके कथन के अनुसार, ''ढोल, गंवार, पशु, शूद्र, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी।''

तुलसी के इस कथन ने स्त्री के लिए प्रचलित, ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' के विश्वास को तोड़ दिया व नारी के जीवन को आंसुओं से भर दिया। उनके जीवन के लिए यह उक्ति दी जाने लगी, ''अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आंखों में पानी'' आज नारी को पूजनीय स्थान से गिरा कर समाज के निकृष्टम स्थान पर ला पटक दिया गया है। नारी से उसके समस्त अधिकार व स्वतंत्रता को छीनकर गुलामी की जंजीरों में जकड़ने का भरसक प्रयास समाज के ठेकेदार करते रहे हैं। इसी प्रयास का परिणाम घरेलू हिंसा है। घरेलू हिंसा का वार महिलाओं पर तीव्रता से हो इसलिए उन्हें शिक्षा, कानून की जानकारी, आत्मविश्वास, आर्थिक स्वाबलम्बनरूपी ढालों से दूर रखा गया। जिन महिलाओं में ये गुण आ जाते हैं, वे समाज के ठेकेदारों के खिलाफ अपनी जंग छेड़ देती हैं, वे घरेलू हिंसा के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाती हैं।

अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता व कानून की जानकारी के द्वारा महिलाओं की जिंदगी में व्यापक बदलाव लाया जा सकता है। 'घरेलू हिंसा अधिनियम 2005' महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति सचेत

करता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अगर कोई महिला किसी कारण से घरेलू हिंसा की शिकार है तो वह इस अधिनियम की धारा (12) के अन्तर्गत अपनी शिकायत/केस न्यायालय में दाखिल कर सकती है जिसके अधीन न्यायाधीश उन्हें पति की सम्पत्ति में धारा (19) के अनुसार रहने का स्थान/हिस्सा लेने का आदेश पारित कर सकते हैं। धारा (19) के अन्तर्गत महिला को किसी भी व्यक्ति को सम्पत्ति, घर में दाखिल न होने का आदेश पारित कर सकते हैं।

धारा (20) के अन्तर्गत महिला को पति से गुजारा भत्ता का आदेश पारित कर सकते हैं। धारा (18) के अधीन प्रतिरक्षा का आदेश दे सकता है। धारा (22) के अधीन महिला को हुई शारीरिक हानि, मानसिक हानि के लिए क्षतिपूर्ति आदेश पारित कर सकते हैं। धारा (23) के अन्तर्गत न्यायाधीश किसी भी केस में अन्तरिम आदेश पारित कर सकते हैं।

धारा (29) के अन्तर्गत किसी भी आदेश के खिलाफ महिला ऊपरी न्यायालय में अपील दाखिल कर सकती है।

अतः महिलाओं को इन कानूनों की जानकारी अवश्य ही दी जानी चाहिए, जिससे वे घरेलू हिंसा से अपना बचाव कर सके। जिन महिलाओं को इनकी जानकारी है वे अपनी जिन्दगी में व्यापक बदलाव भी ला रही हैं। वे मनपसन्द विद्या ग्रहण कर घर की दहलीज़ पार कर स्वाबलम्बी बन रही हैं। नौकरी कर रही हैं, वे घरेलू हिंसा के खिलाफ आवाज़ उठा रही हैं–

''तोड़ दो जुल्म की जंजीरें,
नारी तुम अब गुलाम नहीं,
कानून बना है रक्षक तुम्हारा,
घरेलू हिंसा से तकरार सही,
आंसू ना बहाओगी
कह कर रोष जताओगी,
तभी तो आजादी पाओगी।''

अतः निष्कर्षतः कह सकते हैं कि महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है, उसके पास शिक्षा व कानून की जानकारी का होना परमावश्यक है; तभी वह सभी प्रकार की हिंसाओं के खिलाफ अपनी आवाज़ उठा सकती हैं व समाज में अपने पूर्व स्थान को प्राप्त कर सकती हैं।

संपर्क

(हिंदी प्राध्यापिका)
रा.क.व.भा. विद्यालय
खरकड़ा (रोहतक)
ई. मेल–renukakhundia1@gmail.com

आदिवासी भाषा विज्ञान

खोरठा साहित्य : विकास, दशा और दृष्टि

धनंजय प्रसाद

भाषा सिर्फ सूचना या प्रसार हासिल करने का माध्यम नहीं होती है। ये सभ्यता की आंख और संस्कृति की वाहक भी होती है। भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा विचारों, भावों को व्यक्त करते हैं। वैसे तो भाषा अपने प्रारंभिक रूप में संगीतात्मक थी। इसके वाक्य शब्द की भांति थे। कालांतर में इसमें परिवर्तन हुए। मार्क्स ने भाषा को विचार का प्रत्यक्ष यथार्थ कहा है। यथार्थ का सीधा प्रतिबिंब विचार होता है और भाषा विचार का प्रतिबिंब होती है। उन्होंने कहा कि भाषा का भी श्रम के आधार पर विकास हुआ, उसने चेतना समृद्ध करने में भारी योगदान किया है। भाषा में समाज को जोड़ने की शक्ति होती है।

संसार में 2,796 भाषाएं हैं। भारत में 179 भाषाएं हैं और 544 बोलियां हैं। बावजूद इसके इस देश में दो तरह की भाषाएं प्रचलित हैं। एक शासकों की भाषा और दूसरी जनता की भाषा। शासकों की भाषा जिसके माध्यम से किसी शासक के आर्थिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक काम संचालित होता है। दूसरी है जनभाषा यानी जनता की भाषा–लोकभाषा जिसका इस्तेमाल सामान्य लोग अपने व्यावहारिक जीवन में सभी पहलुओं पर करते हैं। झारखंड निर्माण में लोकभाषाओं की भूमिका अहम रही है, जिसमें से खोरठा भी सबसे अधिक बोली जाने वाली लोकभाषा है। जिसका अपना समृद्ध साहित्य भी है। मूलतः सम्पूर्ण भाषाओं को 18 भाषा परिवार में रखा गया है। भारत में बोली जाने वाली भाषा भारोपीय परिवार और द्रविड़ परिवार की भाषाएं हैं। भारोपीय परिवार में हिन्दी साहित्य खोरठा को भी रखा गया है।

खोरठा लोक साहित्य प्राचीन काल से लिखा जा रहा है। मानव जीवन की आदिम परंपराओं और उन अवशेषों को खोरठा लोक साहित्य संजोएं रहा, साथ ही इसमें लोकजीवन की समग्रता समाहित रहती है। खोरठा का बहुत ही प्राचीनतम इतिहास रहा है। भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व खोरठा आदिम वासियों की बोली के रूप में प्रचलित थी। आर्यों के आगमन के पश्चात् उन्होंने भी इसे सहृदयता से अपनाया। कालांतर में खोरठा सामंतों, जमींदारों, राजा–महाराजाओं तथा ठाकुर घरानों के रंगमहलों में या लोकगीत (झूमर) के रूप में मनोरंजनार्थ और अधिक पुष्ट और समृद्ध होती गई।

खोरठा भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषा के विद्वानों एवं वैज्ञानिकों के विभिन्न मत हैं। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक एवं लेखक डॉ. ए.के. झा का कहना है कि खोरठा भाषा मोहनजोदड़ो–हड़प्पा में बोली के रूप में प्रचलित थी। उनका मानना है कि खोरठा की उत्पत्ति खरोष्ठी लिपी से हुई है, जो भारत का सबसे प्राचीनतम लिपि है। झा ने कहा है कि खरोष्ठी से खोरोठो–खोरोठा–खोरठा भी उत्पन्न हुआ है। बहरहाल, इतना तो तय है कि यह भाषा प्राचीन काल से सरिता की भांति झारखंड की धरती पर सतत् प्रवाहमान है। खोरठा क्षेत्र में उपलब्ध लोकगीतों एवं जातक कलाओं, कहावतों, लोकमान्यताओं, विश्वास एवं प्रचलित प्रथा और इसके गहन अध्ययन एवं चिंतन के पश्चात यह प्रमाणित होता है कि खोरठा प्रागेतिहासिक काल में बोली के रूप में विद्यमान था। खरोष्ठी लिपि के संबंध में डॉ. नागेश्वर महतो ने ''खोरठा भाषा गियान'' नामक

इस लोकसाहित्य में असमानता–विषमता का कोई स्थान नहीं है। खोरठा लोक साहित्य में सभी जातियों की भागीदारी लोककथाओं में एवं लोकगीतों में सामान्य रूप से देखने को मिलती है। खोरठा में लोक साहित्य की भावना सर्वोपरि है। इसमें प्रकृति और संस्कृति दोनों का अद्‌भुत साम्य मिलता है। विकृति का यहां सर्वदा अभाव दिखता है।

पुस्तक लिखकर चर्चा की है कि यह लिपि खरोष्ठी लिपि में ही खोरठा भाषी और इसके विद्वान लेखन करे। किंतु लिपिगत जटिलता की वजह से सुगम और सरल लिपि देवनागरी लिपि में ही खोरठा का लेखन कार्य किया जा रहा है।

खोरठा भाषा का क्षेत्र–सामान्य रूप से झारखंड के गिरिडीह, हजारीबाग, बोकारो, जामताड़ा, दुमका, देवघर, गोड्डा, धनबाद, सिंहभूम जिलों में खोरठा बोली जाती है। इसकी संपुष्टि भाषाविद् डॉ. डोमन साहू समीर ने की थी। प्रो. बी एन ओहदार ने कहा कि उ. छोटानागपुर और संथाल परगना के 32,000 वर्ग किमी से अधिक बड़े भू भाग में खोरठा परिख्याप्त है। अनुसंधानकर्ताओं ने कहा कि खोरठा बिहार के बांका और जमुई जिलों में भी बोली जाती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ. चतुर्भुज साहू ने कहा है कि खोरठा का क्षेत्र विस्तार पूर्व से पश्चिम में 150 मील लंबा और दक्षिण से उत्तर में 100 मील चौड़ा है। शोधकर्ता भोलानाथ महतो ने कहा है कि छोटानागपुर और संथालपरगना के अलावे आसाम, अंडमान निकोबार द्वीप समूह, मॉरिशस आदि इलाकों में खोरठाभाषी प्रवास कर जीवनयापन कर रहे हैं। यह इलाका भी खोरठांचल के अंतर्गत पड़ेगा। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. गियर्सन के अनुसार खोरठा बिहारी के अन्तर्गत एक भाषा है। बिहारी भाषा का सीमा निर्धारण करते हुए उन्होंने लिखा है कि–बिहारी केवल बिहार की भाषा ही नहीं वरन् वह प्रदेश के बाहर बोली जाने वाली भाषा है। इस प्रकार यह हिमालय से लेकर दक्षिण सिंहभूम तक और दक्षिण पूर्व में मानभूम से बस्ती तक इस प्रकार इसके द्वारा अधिकृत संपूर्ण भू भाग की 90,000 मील है।

खोरठा के शिष्ट साहित्य के अग्रदूत श्रीनिवास पानुरी का मानना है कि खोरठा संथाल परगना के 34,000 वर्ग किमी पूरब से पश्चिम 225 मील दुमका से मानुत के बीच व्यापक रूप से बोली जाती है। इस भाषा के बोलने वालों की संख्या लगभग डेढ़ करोड़ लोग है। जो अपने दैनिक जीवन में खोरठा भाषा का इस्तेमाल करते हैं। कुल मिलाकर खोरठा भाषा का काफी विकास हुआ है। और इसके बोलने वालों की संख्या झारखंड के बाहर मिलाकर लगभग ढाई करोड़ है जो खोरठा भाषा का इस्तेमाल संपर्क के रूप में करते हैं।

खोरठा साहित्य को दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है। लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य। लोक साहित्य का इतिहास बहुत ही प्राचीन है जिसका जिक्र किया जा चुका है। लोक साहित्य की कुछ विशेषताएं हैं जो निम्न प्रकार हैं, जिसकी चर्चा करने की जरूरत है। लोक साहित्य मौखिक परंपरानुसार विकासशील प्रक्रिया में रहा है। तथा इसके रचनाकार और काल अज्ञात हैं। खोरठा लोक भाषा भी इससे अछूता नहीं है। मध्ययुगीन खोरठा लोकगीतकार के रूप में भवप्रीतानंद, विनोदिया, चामु कमार, तितकी राय, सखा गोड़ाइत, मो. हनीफ, गंगू राम, गौरखिया आदि का नाम लिया जा सकता है। खोरठा लोक साहित्य झारखंडी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है और इससे झारखंडी संस्कृति भिन्न है। कहते हैं–जब तक मांदर का थाप है, नृत्य है और गीत है तब तक झारखंडी संस्कृति जीवित रहेगा यानी झारखंडी चेतना–मूल्य संस्कृति और लोकाचार गतिशील रहेंगे। झारखंडी समाज के इन मूलभूत कारकों में भारतीय सांझी विरासत विभिन्न जनसमूहों की आंतरिक और अंतरसंबंधों, प्रतिक्रियाओं से निर्मित

हुआ है। एक और आदिम जन व्यवहार है तो दूसरी ओर आधुनिक तकनीकी समाज। इसके लोक साहित्य में प्राकृतिक चित्रण के बाहुल्य है। प्रकृति के विविध रूप–नदी, पर्वत, वन, लता, फल, फूल, झरना, जलाशय, सूर्य, चांद, तारे, आकाश आदि का दर्शन खोरठा साहित्य में देखा जाता है। खोरठा का लोक साहित्य सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का दर्पण है। माटी, मातृभाषा, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का दर्पण है। माटी, मातृभाषा एवं मानुष की सर्वोच्चता इसकी विशेषता है। वर्ग, वर्ण, लिंग, ऊंच–नीच का भेद–भाव समाज में नहीं है। इसके लोकसाहित्य में असमानता–विषमता का कोई स्थान नहीं है। खोरठा लोक साहित्य में सभी जातियों की भागीदारी लोककथाओं में एवं लोकगीतों में सामान्य रूप से देखने को मिलती है। खोरठा लोक साहित्य भावना सर्वोपरि है। इसमें प्रकृति और संस्कृति दोनों का अद्‌भुत साम्य मिलता है। विकृति का यहां सर्वदा अभाव दिखता है।

लोक संस्कृति–मानव की सबसे बड़ी संपत्ति और उसकी संस्कृति है। संस्कृति ही मानव को एक सामाजिक प्राणी बनाता है। भौगोलिक दशा यथा जलवायु, वर्षा, धूप, मिट्‌टी और सामाजिक प्रभाव से मानव स्वयं को ऐसा ढाल लेता है कि वह प्रतिकूल दशाओं से उपजे ज्ञान और संस्कृति की संपूर्णता ग्रहण करता है। मनुष्य जैसे संस्कृति में पलता है उसके व्यक्तित्व का विकास वैसा ही होता है। इसीलिए संस्कृति व्यक्तित्व के विकास की कुंजी है। जीवन की समग्रता हमें संस्कृति से प्राप्त होती है। मानव हित में मानव समाज द्वारा बनाए गए सामाजिक नियम रीति–रिवाज, पर्व–त्योहार आदि के सामूहिक रूप को संस्कृति कहा जाता है।

लोक संस्कृति की विशेषताएं हैं कि यह मानव निर्मित हैं। संस्कृति मानव अनुभव की परिणति है। संस्कृति में समतावाद समाहित है। संस्कृति हस्तांतरित है। लोक संस्कृति मानव व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होती है। लोक संस्कृति समाज का आदर्श है। लोक संस्कृति निराकार होती है। मूल रूप में संस्कृति हमें जीवन जीने का प्रशिक्षण देती है। संस्कृति से हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

खोरठा भाषा के विद्वान डॉ. ए.के. झा का विचार इस प्रकार है कि झारखंडी संस्कृति में जातिवाद, गुलामी प्रथा, लिंग भेद नहीं है। यहां कोरी कल्पना, बनावटीपन आदि का भी अभाव है। यह प्रकृति से जुड़कर जीने वाली संस्कृति है।

खोरठा लोक साहित्य बहुत ही पुराना है और इसके कोई पौराणिक इतिहास का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है। किन्तु इतनी बात सच है कि इसका लोक साहित्य आदिम काल से मौजूद है। प्रमाण स्वरूप–लोकगीत, लोककथा, प्रकीर्ण साहित्य, लोकगाथा, लोक नाटक आदि हैं। खोरठा को लोक साहित्य का जनक कहा जा सकता है क्योंकि सर्वप्रथम जिस साहित्य की रचना गीतों और कविताओं के रूप में हुई है वह प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण के अरण्य आच्छादित कर्मभूमि के बीच पर्वतों की गोद में कलकल निसरित नदियां, झरना सरिता और भी असंख्य धाराओं के तरह इसके लोकगीत गली, मुहल्ला, चौपाल, खेत–खलिहान, घर–बाजार में गुंजित होते रहे हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये लिखित और मौखिक रूप में मौजूद हैं।

खोरठा साहित्य को चार भागों में बांट कर अध्ययन किया जा सकता है।

1. प्राचीन काल–(आदिम काल से 1947 तक) प्रारंभ से आजादी के बाद तक के काल को प्राचीन काल कहा गया है। इस काल में लोकसाहित्य की रचना होती रही, जिसमें मुख्य रूप से चमरू कमार (1857–1927) भवप्रीतानंद (1886–1972) भुवनेश्वर दत्त शर्मा (1895–1984) विनोद सिंह (1990) आदि इस काल के रचनाकार माने जाते हैं।

2. मध्य काल (1974–1980)–खोरठा साहित्य के शुरुआती रचनाकार होने का श्रेय श्रीनिवास

पनुरी जी को जाता है क्योंकि खोरठा के अग्रदूत श्रीनिवास पानुरी जी रहे हैं। इनकी पहली पुस्तक कविता संकल के रूप में 'बाल–किरण' 1954 में प्रकाशित हुई। उसके बाद इनकी दूसरी पुस्तक 'दीप–ज्योति; 1957 में आई। तत्पश्चात् श्रीनिवास पानुरी जी ने 1957 में खोरठा साहित्यिक मासिक पत्रिका 'मातृभाषा' के रूप में प्रकाशित की। इसके बाद उन्होंने कालिदास द्वारा रचित महाकाव्य 'मेघदूत' का खोरठानुवाद 1968 ई. में किया। 1969 ई. में उन्होंने राम–अमृत खंड काव्य प्रकाशित किया। इस बीच श्रीनिवास पानुरी के प्रयास से खोरठा साहित्य एवं संस्कृति के विकास के लिए खोरठा साहित्य, संस्कृति परिषद् का गठन 1961 ई. में किया गया, जिसके मुख्य चार स्तंभ थे–श्रीनिवास पानुरी, प्रो. नरेंद्र नीलकमल, विश्वनाथ दसौधी एवं नारायण महतो। उन्होंने 1970 में खोरठा 'शीर्षक' से खोरठा साहित्यिक पाक्षिक पत्रिका प्रकाशित कराया, जिसके तीन–चार अंक प्रकाशित हुए जिसमें खोरठा साहित्य की सभी विधाओं की रचनाएं प्रकाशित की गईं।

3. आधुनिक काल (1980–2000)–1982 में रांची विश्वविद्यालय में जनजातीय भाषा विभाग को जोड़ा गया और इसके विभागाध्यक्ष डॉ. रामदयाल मुंडा बनाए गए। 1983 ई. में डॉ. ए.के. झा ने 'खोरठा काठै गइदेव खड़ी' नामक शीर्षक से पहली खोरठा गद्य पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गई। इसके बाद इनकी दूसरी पुस्तक–'खोरठा काठै पइदेव खड़ी' प्रकाशित की गई। 1986 में रांची विश्वविद्यालय में खोरठा की पढ़ाई के लिए विभाग का गठन किया गया जिसके संपादन मंडल में श्रीनिवास पानुरी एवं डॉ. ए.के. झा चयन किए गए। इसी दरम्यान 1995 में संथाल परगना के मध्यपुर की साहित्यिक उर्वरक धरती से 'इंजोर' नामक खोरठा–हिंदी प्रतिनिधि साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जो आज तक निरंतर जारी है। 'इंजोर' के लघुकथा, गजल, कहानी, व्यंग्य, नाटक और बाल–साहित्य विशेषांक बहुचर्चित रहे।

4. उत्कर्ष काल (2000 से आज तक)–15 नवंबर 2000 को झारखंड अलग राज्य बना। झारखंड राज्य बनने के आंदोलन में खोरठा साहित्य की भी अहम् भूमिका रही है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि साहित्य ही आंदोलनों को उद्वेलित करता है। झारखंड बनने के बाद खोरठा भाषा का विकास उत्तरोत्तर होने लगा। नीचले स्तर की पढ़ाईयों में भी खोरठा को स्थान दिया गया एवं सरकारी नौकरियों में भी क्षेत्रीय भाषा के रूप में इसे शामिल किया गया, जिसकी वजह से स्थानीय लोगों में खोरठा के प्रति रूझान बढ़ा। लेकिन इतने के बावजूद भी जिस गति से खोरठा का विकास होना चाहिए था वो विकास नहीं हो पाया है।

खोरठा शीर्ष साहित्य को विधागत तरीके से विभाजित करके देखते हैं तो पाते हैं कि गद्य और पद्य दोनों में इसकी रचनाएं तेजी से हो रही हैं। और इसका साहित्य समृद्धि की ओर अग्रसर है।

पद्य साहित्य–खोरठा साहित्य में पद्य की बहुत ही समृद्ध परंपरा प्राचीन काल से रही है। इस विधा में काफी रचनाएं हुई हैं, जिसमें मुख्य रूप से–गीत, कविता, झूमर, झूमटा, फिंगाठी (व्यंग्य), क्षणिकाएं (चिनगियां) खंड एवं प्रबंध काव्य आदि की रचनाएं हुई हैं, जिसमें विस्तार में जाने की जरूरत नहीं है। इस विधा में लगभग पांच दर्जन से अधिक पुस्तकें आ चुकी हैं। इसमें मुख्य रूप से कुछ पुस्तकें इस प्रकार हैं–रमणिका गुप्ता का काव्य संकलन 'बोनेक बोल', सुकुमार का गीत संकलन–'सेवाति आर झिंगूर', शिवनाथ प्रामाणिक का कविता संकलन रूसल पुटुस, संतोष कुमार महतो का कविता संकलन–'एक पथिया डोंगा, महुआ आदि।

गद्य साहित्य–इस विधा में श्रीनिवास पानुरी द्वारा संपादित पत्रिकाएं–'मातृभाषा' एवं 'खोरठा' पहली गद्य रचना पत्रिका के रूप में सामने आईं और इसके माध्यम से गद्य रचनाकारों को काफी प्रोत्साहन मिला और गद्य में खोरठा रचनाएं होने लगीं। विधागत तरीके से देखा जाए तो कहानी के रूप में करीब आधा दर्जन से अधिक कहानी संकलन प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमें प्रमुख रूप से पंचम महतो के 'फरीछ–डहर' 2001 में, जनार्दन गोस्वामी के 'खटरस',

गजानन महतो की 'पुटुस पुटम' रामटहल महतो की 'मइसराइल हवा' इसके अलावे प्रो. विनोद कुमार की कहानी गद्य–पद्य संग्रह के रूप में जनजातीय भाषा विभाग के द्वारा प्रकाशित हुई। उपन्यास के रूप में अब तक मात्र दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। प्रो. चितरंजन महतो चितरा की 'जिनगीक टोह' एवं विश्वनाथ दसौधी की 'अजगर' एवं श्रीनिवास पानुरी जी की 'चाभी काठी' प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अलावे धनंजय प्रसाद की एकांकी रचना 'काइल हमर हे' छपने के इंतजार में है। लघु कथा के रूप में स्वतंत्र रचनाएं होती रहीं पर पुस्तक रूप में सिर्फ दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। प्रथम धनंजय प्रसाद की 'के हरमखोर' एवं आकाश खुटी की 'चेठा'। इसके अलावे संस्मरण, जीवनी, यात्रा–वृत्तांत, व्यंग्य आदि विधाओं में कोई पुस्तक प्रकाशित होने का प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है। हां इस विद्या में रचनाएं विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। खास कर 'इंजोर' 'लुआठी' आदि पत्रिकाओं में गद्य रचनाओं सहित पद्य रचनाएं देखने को मिलती रही हैं। इसके अलावे डॉ. चतुर्भुज साहू की 'खोरठा' साहित्य सदानी' बसुदेव महतो की 'व्याकरण का एक खोमचा', सी. दास आला की 'खोरठा विधान', 'डॉ. एके झा की 'खोरठा व्याकरण' एवं 'भाषा विज्ञान' आदि रचनाएं खोरठा व्याकरण भाषा विज्ञान से संबंधित हैं। इसके अलावे प्रो. बीएन ओहदार की 'खोरठा निबंध' है। अनुवाद के रूप में श्रीनिवास पानुरी द्वारा कालिदास के 'मेघदूत' का खोरठानुवाद, मनमोहन पाठक द्वारा रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित 'गीतांजलि' का खोरठानुवाद एवं 'गीतगोविन्द' के खोरठानुवाद प्रकाशित हुए हैं। इसके अलावे पत्र–पत्रिकाओं में श्रीनिवास पानुरी द्वारा संपादित–'मातृभाषा' (1997), 'खोरठा' (1970) विश्वनाथ दसौधी द्वारा 'तितकी' (1977), धनंजय प्रसाद द्वारा 'इंजोर' (1995 से आज तक), गिरधारी गोस्वामी द्वारा 'लुआठी' (2000 से), अनिल गोस्वामी द्वारा 'सहिया' (2000) के दो अंक प्रकाशित हुए।

इसी तरह खोरठा साहित्य विकास की यात्रा संक्षेप में इस प्रकार है, खोरठा साहित्य विकास और समृद्धि की ओर अग्रसर है। इसमें उत्तरोत्तर विकास की संभावनाएं दिख रही हैं। किंतु क्षेत्रीय स्तर पर विविधता के कारण साहित्य रचना में अड़चनें भी आ रही हैं। हालांकि परिषद् में मौजूद लोगों ने आपस में मिल बैठकर भाषा की एकरूपता के लिए मानक तो तैयार किया है। और वे मानक सर्वमान्य भी माना गया है। इसी आधार पर रचनाएं हो रही हैं। और पाठ्यक्रम में शामिल भी किया गया है।

पर सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि भले ही खोरठा संस्कृति और झारखंडी संस्कृति में सामूहिकता की झलक देखते हैं। खोरठा भाषा के शिखर पर बैठे भाषाविद् एवं विद्वानों के भेदभावपूर्ण रवैए की वजह से इन पर वर्चस्ववाद का आरोप लगता रहा है तथा यह भी आरोप लगता रहा है कि संपूर्ण खोरठा साहित्य दो–तीन जिलों में सिमटकर रह गया है। इसके विकास के लिए ये कमियां या खामियां बहुत बड़े बाधक हैं। आरोप चाहे जो भी हों, भले ही हम इससे सहमत न हों, पर इतनी बात तो जरूर है कि शिखर पर बैठे लोग संथाल परगना की उपेक्षा करते रहे हैं। संथाल परगना में जबकि अधिक विविधताएं देखी जा रही हैं। लेकिन इसके बावजूद भी खोरठा के विकास के लिए समर्पित लोग हैं, जो निरंतर खोरठा के लिए आंदोलित रहे हैं। संथाल परगना में खोरठा के विकास में ऐसे लोगों का महत्वपूर्ण योगदान है लेकिन ऐसे लोगों को कहीं भी उचित सम्मान नहीं मिला है। हालांकि खोरठा भाषा के संबंध में बहुत से विद्वानों का विभिन्न तरह का मत है। कुछ लोग इसे मगही तो कुछ लोग इसे अंगिका का अपभ्रंश मानते हैं। उचित साहित्य के अभाव में परीक्षार्थी भी दिगभ्रमित होते रहे हैं। बाजार में उपलब्ध प्रतियोगिता साहित्य ने भी उन्हें दिगभ्रमित करने का काम किया है। इतना ही नहीं बाजार में उपलब्ध ऑडियो एवं वीडियो कैसेट भी खोरठा को एक तरफ जहां प्रसारित करने का काम किया है, तो दूसरी तरफ खोरठा साहित्य की एकरूपता या मानक पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है। जरूरत है ऐसी स्थिति में खोरठा की चिंता मिल–बैठकर अपने संस्कृतिनुकूल रवैये से लैस होकर इस पर विचार करें। एक दूसरे को सम्मान देकर आगे बढ़ने–बढ़ाने का काम करें। तभी खोरठा का सही और सर्वांगिण विकास हो पाएगा।

आदिवासी आलोचना

रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री जीवन संघर्ष

इन्द्रदेव शर्मा

हिंदी कथाकारों ने समाज में स्त्री की स्थिति को अनेक रूपों में चित्रित किया है। कहीं वह पति की सेवा करने वाली के रूप में नजर आती है, तो कहीं असहाय दीन–हीन व प्रत्येक अन्याय को चुपचाप सहन करने वाली अबला के रूप में, कहीं वह प्रेमिका के रूप में सहयोगिनी की भूमिका में नजर आती है, तो कहीं वह पुरुष की प्रेरणा शक्ति के रूप में चरित्र लिए है या कहीं वह अन्या व अत्याचार का विरोध करने वाली विद्रोहिणी की भूमिका में दिखाई देती है।

कुछ कहानियों में कहीं वह सुदृढ़ व्यक्तित्व शालिनी व आत्मनिर्णय लेने में सक्षम दिखती है, तो कहीं नैतिक बंधनों से जकड़ी व्यवस्थागत ढांचे में फलीभूत निराश, कुंठा व वेदना का शिकार दिखाई देती है। इस प्रकार हिंदी साहित्य में स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को उजागर करने का प्रयास समय–समय पर किया गया है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की स्थिति को दर्शाने के प्रयास उपन्यासों, कहानियों व कविताओं में बराबर होते आ रहे हैं। वर्तमान समय विमर्शों का युग है, जैसे–दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श। किंतु इधर कुछ वर्षों से स्त्री विमर्शों की चर्चा अधिक होने लगी है। विशेष रूप से स्त्रीवादी लेखिकाओं ने इस दिशा में विशेष प्रयास किए हैं। वे स्त्री वर्ग से संबंधित होने के कारण स्त्री के उत्पीड़न, प्रताड़ना और संवेदना को बतौर एक स्त्रीवादी लेखिका और प्रामाणिक तरीके से अभिव्यक्त कर सकती है।

'युद्धरत आम आदमी' की संपादक रमणिका गुप्ता ने लिखा है कि ''महिला केंद्रित कहानी संग्रह की यह योजना वास्तव में कोचीन की शोधकर्ता मधु वासुदेवन जी के पत्र पर बनी। गोष्ठियों में प्रायः यह कहा जाता रहा है कि महिलाएं घर–आंगन में सिमटकर रह जाती हैं, उनके पात्र गुड्डी–गुड्डा, आज्ञाकारी पुत्र–पुत्रियां, सास–ननद, बहू या सताई गईं उत्पीड़ित बहुएं या माताएं ही होती थीं।''[1] इस परम्परा और विवशता को तोड़ते हुए स्त्री का चित्रण कुछ आदिवासी और गैर–आदिवासी लेखकों ने अपनी कविताओं या कथा साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

अब तक आदिवासी साहित्य में कुछ ही स्त्रियां आदिवासी स्त्री विमर्श की बागडोर संभाल रही हैं। यह माना जाता रहा है कि दुनिया की सभी स्त्रियों की समस्याएं एक जैसी हैं। हिंदू समाज की अपेक्षा आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्थिति भिन्न है। यह भिन्नता सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से देखी जा सकती है। बावजूद इसके आदिवासी स्त्रियों की स्थिति वैसी ही है, जैसे अन्य भारतीय समाज के स्त्रियों की। आदिवासी समाज के परम्परागत ढ़ांचे में जो स्थान स्त्रियों के लिए सुनिश्चित था, उसमें शैक्षिक विकास के कारण कुछ बदलाव आया है। जिसका प्रभाव यह हुआ कि आज आदिवासी समुदाय की बहुत सारी स्त्रियां पढाई के क्षेत्र में आ रही हैं और उनका शैक्षिक स्तर धीरे–धीरे बढ़ रहा है।

आदिवासी साहित्य लेखन बहुत कम मिलता है। बहुत समय पहले आदिवासी साहित्य मौखिक रूप में था। संथाली भाषा में कुछ लेखिकाओं का साहित्य मिलता है। जनसंख्या की दृष्टि से संथाल परगना

झारखण्ड का सबसे बड़ा आदिवासी क्षेत्र है। अन्य भाषाओं की अपेक्षा संथाली भाषा का साहित्य अधिक है। खड़िया भाषा में भी कुछ साहित्य मिलता है। इस भाषा के साहित्य लेखन में रोज केरकेट्टा का नाम उल्लेखनीय है। आदिवासी साहित्य में जहां तक स्त्री कथाकारों का प्रश्न है, तो लेखिकाओं की संख्या आसानी से उंगुलियों पर गिनी जा सकती है। जैसे–निर्मला पुतुल, मंजू ज्योत्सना, रोज केरकेट्टा और वंदना टेटे प्रमुख लेखिकाएं हैं।

आज भी आदिवासी समाज में सबसे ज्यादा परम्परागत गीत हैं जो लिखित रूप में उपलब्ध नहीं हैं; 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा' त्रैमासिक पत्रिका के संपादक वंदना टेटे ने अपने एक लेख में लिखा है–''स्त्रियों पर अध्ययन करते हुए अक्सर अध्येता लोग काली, सीता, द्रौपदी, दुर्गा से बात शुरू करते हैं। जैसे भाषा, साहित्य, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान, परम्परा और समाज पर विमर्श की शुरुआत वेद और पुराण कथाओं के उल्लेख से होती है।''[2] आदिवासी समाज में ऐसी कई स्त्रियां हैं जिन्होंने भारत को आजाद कराने में स्वयं सेना की बागड़ोर संभाली फिर भी इतिहास में उनकी कहीं चर्चा नहीं की गई। यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। इन स्त्रियों में अहिल्या, सिनगी दई, फूलो–झानों और माकी मुंडा इत्यादि हैं।

रोज केरकेट्टा के कहानी संग्रह 'पगहा जोरी–जोरी रे घाटो' में आदिवासी स्त्री जीवन की समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। इनकी कहानियों में स्त्री की स्थिति को विविध रूपों में अभिव्यक्त किया गया है। इन कहानियों में बालिकाओं, किशोरियों, युवतियों, प्रौढ़ सभी अवस्था की स्त्रियों का चित्रण है। उनकी इच्छाएं, सपने, शरारत, विवशता, करुणा और वेदना सभी का उन्होंने सफलतापूर्वक चित्रण किया है। लेकिन इनकी कहानियों में स्त्री प्रतिकार का स्वर तीव्र रूप में मुखरित हुआ है। चाहे वह संपत्ति को लेकर विद्रोह हो या स्त्री पुरुष समानता की बात हो या फिर वर्तमान समय में स्त्रियों के प्रति हो रहे अन्याय की बात हो। इस कहानी संग्रह में एक ओर शोषित स्त्री का चित्रण है तो दूसरी ओर संघर्ष का सामना करती हुई और पुरुषवादी परम्परा का विरोध करतीं (जताती) हुई स्त्री का रूप है।

दरअसल वर्तमान समय में आदिवासी समाज और गैर–आदिवासी समाज दोनों पितृसत्ता के शिकार हैं। समाज में स्त्रियों के कुछ सीमित दायरे होते थे जो उन्हें सामाजिक बंधन में बांधने में विवश करते थे। आज सम्पूर्ण धर्म, जाति और समूह के स्त्री जीवन में काफी बदलाव आए हैं। रोज केरकेट्टा इसी पितृसत्तात्मक समाज को लक्ष्य करते हुए अपनी कहानियों के माध्यम से विरोध प्रकट करती हैं। इनकी कहानियों के स्त्री पात्र पितृसत्तात्मकरूपी समाज व्यवस्था का प्रतिकार करते हैं और अपने हक को प्राप्त करने के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। इस कहानी संग्रह की समीक्षा करते हुए कथाकार रणेंद्र लिखते हैं–''कथाकार की सचेत स्त्री–दृष्टि आदिवासी झारखंडी समाज में स्त्री–पुरुष समता के कथित को एक झटके से तोड़ती नजर आती है। कहानियां बिना शोर किए यह बताती हैं कि पितृसत्ता यहां भी है, जो

रोज केरकेट्टा की कहानी 'केराबांझी' भी स्त्री प्रतिकार की कहानी है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में जहां स्त्रियां पुरुषों के सामने बातें नहीं कर सकतीं, कोई स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकतीं, पुरुष चाहे स्त्री को जितना प्रताड़ित करे पर स्त्रियां पलटकर जवाब नहीं दे सकती थीं। ऐसे समय में लेखिका ने अपनी कहानियों में स्त्री को सामाजिक नियमों के विरुद्ध खड़ा करके स्त्रियों की चेतना, जागरुकता और बदलाव को प्रदर्शित करने का काम किया है।

बेटियों–स्त्रियों का जमीन पर अधिकार नहीं स्वीकार करती, बेटों को बेटियों से ज्यादा तरजीह देती है, गैर–आदिवासी सामंती नजर उन्हें 'गोश्त' की तरह परखती और इस्तेमाल करना चाहती है आदि आदि। इन कहानियों की विशिष्टता यह है कि यहां स्त्री–बेटियां प्रतिकार करती दिखती हैं, जबरदस्त प्रतिकार।''[3]

इस संग्रह की अधिकांश कहानियों जैसे–'भंवर', 'घाना लोहार का', 'केराबांझी', 'छोटी बहू', 'गंध', 'से महुआ गिरे सगर राति', 'मैना', 'पगहा जोरी–जोरी रे घाटो' आदि में स्त्री प्रतिकार के तीव्र स्वर दिखाई देते हैं। झारखण्ड के पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का जमीन पर हक के सवाल क्रूरता और हिंसा के किस चरम तक जाते हैं, इसकी एक झलक 'भंवर' कहानी में रोज केरकेट्टा ने दिखाने की कोशिश की है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था से घिरी स्त्री समाज के आगे विवश और लाचार है, पुत्र न होने की वजह से उसे उसकी सम्पत्ति नहीं मिलती है। सबसे बड़ा दोष यह है कि वह एक आदिवासी स्त्री है।

इस कहानी में मालकिन सम्पत्ति पाने के लिए कानून का सहारा लेती है। काफी प्रयास करने के बाद भी मालकिन को असफलता ही हाथ लगती है–''मालकिन और बेटियां आज जान गईं हैं कि वे कितने असहाय और अकेली हैं। अपना कहने को कोई नहीं है। 14 अप्रैल 1937 को 'हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम 1937' पारित हो चुका था। इसे कृषियोग्य जमीनों पर 'बिहार अधिनियम 6, सन् 1942' के द्वारा लागू किया गया। इससे पहले सामाजिक कानून के तहत भी विधवा को पति की संपत्ति पर परिसीमित हक था। मालिक की मृत्यु के बाद मालकिन ने धीरे–धीरे ये सारी बातें सुमन को समझानी शुरू की थीं परन्तु साथ ही उन्होंने अनुभव कर लिया था कि कानून से सामाजिक व्यवस्था बंधी नहीं है। सामाजिक व्यवस्था भी उनके लिए है जिनके पास बाहुबल है। इसलिए कानून को या सामाजिक व्यवस्था को जमीन पर उतारने की कोशिश की जाएगी तो उसका भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा। फिर समाज को स्त्रियों से क्या लेना–देना? पर जीना है तो संघर्ष का रास्ता ही चुनना है। मालकिन को यह भी भरोसा था कि कुटुम्ब शायद दोनों बेटियों के विवाह होने तक उस पर रहम करें। परंतु परिवेशजन्य साक्ष्य इस भरोसे की धज्जियां उड़ा रहे थे।''[4] इतना ही नहीं आज का समाज इतना क्रूर और निर्दयी हो गया है कि इस कहानी के अंत में मालकिन तथा उनकी पुत्रियों की हत्या तक करने पर उतारू हो जाता है।

आदिवासी साहित्य में जब दलित और आदिवासी स्त्री चित्रण की बात आती है, तो प्रायः लाचार, अशिक्षित, ठिगनी, काली, दुबली–पतली स्त्रियों का ही चित्रण किया जाता था। रोज केरकेट्टा की कहानियों में सदियों से गूंगी और बेबाक स्त्री को आवाज़ दी गई है। इनकी कहानियों में स्त्री पात्र चुप नहीं बैठते, वे अपने अधिकारों को पाने के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। रोज केरकेट्टा ने एक वर्ग के पुरुषों का स्त्रियों के प्रति रुख, स्त्री का उन स्थितियों के अनुरूप अपने को बदलते हुए आगे बढ़ते जाना और स्त्री मानसिकता को खुले रूप में उजागर किया है, जो इनके कहानी संग्रह में स्पष्ट दिखाई देता है।

कहानी 'घाना लोहार का' में लेखिका ने झारखण्ड की स्थानीय समस्या को दिखाया है। इस कहानी की स्त्री पात्र कुंठा और हीनभावनाओं से लड़ते–भिड़ते देवी सीता व सावित्री नहीं हैं, बल्कि वे आज की समस्याओं का सामना करते हुए, इन समस्याओं से लड़ते हुए और विरोध करते हुए जूझती हुई स्त्री हैं, जीवन से संबंधित अनेक समस्याओं का सामना करती हुई स्त्री हैं। पितृसत्ता का विरोध करती हुई स्त्री हैं।

लेखिका ने इस कहानी में झारखण्ड की स्थानीय समस्या को दिखाते हुए स्त्रियों की विडम्बनाओं को चित्रित किया है कि किस प्रकार एक आदिवासी स्त्री

को निम्न जाति का होने की वजह से समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है, जो आदिवासी स्त्रियों की बहुत बड़ी समस्या है। यह समस्या केवल झारखंड की ही नहीं है बल्कि सम्पूर्ण आदिवासी इलाकों की है। झारखंड में कई औद्योगिक कारखानों के स्थापित होने से अन्य राज्यों से अनेक लोग आकर बस गए हैं और स्थाई रूप से जमीन भी हासिल कर लिए हैं तब वे जब इनका आदिवासी स्त्रियों के साथ संबंध होता है और आदिवासी स्त्रियां उनके साथ रहने लगती हैं, कड़ी मेहनत करके उनके परिवार वालों का भरण–पोषण करती हैं, परन्तु जब संपत्ति की बात आती है तो वही परिवार उसका साथ नहीं देता है। उसे किसी भी प्रकार का कोई हक या अधिकार देने से साफ–साफ इंकार कर दिया जाता है।[5]

'घाना लोहार का' कहानी की नायिका रोपड़ी को जगत सिंघ अपनी पत्नी की तरह रखता है। घर का सारा काम वह करती। उससे गोबर फेंकवाना, झाड़ू लगाना, मवेशी को देखने से लेकर कपड़े धोने तक का काम करवाता है। आदिवासी होने के कारण वह दो काम नहीं करती–पीने का पानी भरना और रसोई बनाना। बात जब संपत्ति की आती है तो उसे उसके अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। इसलिए उसे यह अधिकार नहीं मिल रहा है कि उसने जगत सिंघ के साथ सात फेरे नहीं लगाए। इस कहानी में स्पष्ट देख सकते हैं–''बहरिया के बेटे को संपत्ति किस कानून के मार्फ़त मिलेगी? बहरिया तो धंगरिन होती है। वह तो बेसवा होती है। मंत्र पढ़ कर, हवन कर उसका ब्याह नहीं होता। वह तो इसको ठीक कीजिए।''[6]

रोपड़ी के मन में अपने और अपने पुत्र का अधिकार पाने के लिए अंतर्द्वन्द्व चलता है। अंत में वह पंचायत बुलाती है। रोपड़ी का विश्वास था कि पंचायत के फैसले से न्याय मिल जाएगा क्योंकि पंच को परमेश्वर के समान माना जाता है लेकिन पंचों ने भी साथ नहीं दिया। पंचायत ने फैसला सुनाया कि जब तक वह जिंदा है उसे खारपोश दिया जाएगा। उसका बेटा काम करके कहीं भी कमा–खा लेगा। पंचायत जो पुरुषों की पंचायत है उसने अपने अनुरूप ही फैसला सुनाया। न तो पंचायत न रोपड़ी का साथ दिया और न ही गांव का कोई भाई–बंधु। संपत्ति रोपड़ी को नहीं मिली। अंत में समाज से मददहीन और बहिष्कृत हो जाने के बाद वह प्रतिहिंसा का आग्नेय रूप धारण कर लेती है और जगत सिंघ की हत्या कर देती है। एक स्त्री को अपने अधिकार न मिलने के कारण हत्या करवाना स्त्री समुदाय में बहुत बड़ी क्रांति की ओर संकेत करता है।

रोपड़ी के माध्यम से लेखिका ने संपूर्ण आदिवासी युवतियों के चित्र को समाज के सामने रखा है। एक ऐसी कहानी, जिसमें उस स्त्री से उत्पन्न पुत्र को जिस पर उस घर का सारा संसार टिका हुआ है। घर का काम–काज वे ही लोग कर रहे हैं लेकिन उनको किसी भी प्रकार का अधिकार देने से साफ इंकार कर दिया जाता है और छोटी जाति वाला कहा जाता है। रोज केरकेट्टा की कहानी 'केराबांझी' भी स्त्री प्रतिकार की कहानी है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में जहां स्त्रियां पुरुषों के सामने बातें नहीं कर सकतीं, कोई स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकतीं, पुरुष चाहे स्त्री को जितना प्रताड़ित करे पर स्त्रियां पलटकर जवाब नहीं दे सकती थीं। ऐसे समय में लेखिका ने अपनी कहानियों में स्त्री को सामाजिक नियमों के विरुद्ध खड़ा करके स्त्रियों की चेतना, जागरुकता और बदलाव को प्रदर्शित करने का काम किया है। 'केराबांझी' कहानी में स्त्री द्वारा लिए गए निर्णय से घर का मुखिया कालीचरण खुश नहीं है। बहू यह निश्चय करती है कि वह एक ही बच्चे को जन्म देगी, तब उसका ससुर कहता है कि–''ई बालधनवा को देखो एके गो बेटी जनमा के तरना चल रहा है। अरे कोटी कुकुर से का होगा। कनियो आइसने लाया है। अरे! बहुवा पूरा समाज, जात–गोतिया तुम्हें नाम धरेगा। केराबांझी कहेगा रे। हां केराबांझी कहेगा।''[7]

ससुर के वाक्य से स्पष्ट होता है कि उन्हें अपने वंश के लिए एक लड़का ही चाहिए। बांझ, जो स्त्री को गाली देने के समान होता है। इस ठप्पे को वह (बहू) तोड़ते हुए दृढ़ शब्दों में कहती है कि ''आप मुझे केराबांझी कह सकते हैं क्योंकि हमने हां, हम पति–पत्नी ने मिलकर इसे स्वीकारा है।''[8] ऐसी बहू का अपने ससुर के सामने खड़ा होना स्त्री चेतना का प्रभाव दिखाता है। स्त्रियां नहीं चाहतीं कि वह अब सामाजिक बंधनों में बंधकर रहें और जो परिवार का मुखिया कहे वही करें। आखिर वह भी परिवार का एक अंग है। घरेलू कार्यों से लेकर बच्चों के भविष्य के निर्माण में पिता के साथ मां की भी बहुत बड़ी भूमिका होती है। पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ यह कहानी (केराबांझी) पुरजोर तरीके से विरोध करती है। रोज केरकेट्टा के अतिरिक्त अन्य आदिवासी लेखिकाएं जैसे–निर्मला पुतुल भी अपनी कविता 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' में स्त्री प्रतिकार के स्वर दिखाती हैं जो अत्यन्त सघन है।

आरंभ से ही आदिवासी स्त्रियां उपेक्षा और शोषण का शिकार रही हैं। या यूं कहें कि जब से इस समाज में गैर–आदिवासी समाज ने दखल दिया तभी से आदिवासी समाज में स्त्रियों का शोषण बढ़ने लगा। वह चाहे प्राकृतिक संसाधनों या खनिज बाहुल्य क्षेत्रों में श्रमिकों के रूप में हो या अन्य कारणों से। जैसे–जैसे आदिवासी समाज आजीविका के परम्परागत श्रोतों से हटता गया, उसी क्रम से आदिवासी स्त्रियों की स्थिति ख़राब होती गई। बेदखली, विस्थापन और पलायन की सबसे ज्यादा मार आदिवासी स्त्रियों को झेलनी पड़ी। औद्योगिक विकास के साथ ही आदिवासी स्त्रियां पहले से कहीं ज्यादा असुरक्षित हैं।

आदिवासी स्त्रियों के प्रति रोज केरकेट्टा चिंता ही नहीं करती बल्कि इसके प्रति हो रहे शोषण को 'गंध' कहानी के माध्यम से प्रकट करती हैं। यह कहानी अत्यन्त छोटी है, इसके बावजूद एक महत्वपूर्ण सन्देश देने में सफल होती है। इस कहानी की मुख्य पात्र जोसना जो आदिवासी लड़कियों के साथ हो रही छेड़खानी का विरोध करती है, छेड़खानी करने वाले शोहदे पर मुक्के से प्रहार करके यह बता देती है कि उसका पूरा वजूद ही कितना अश्लील है। कहानी में जोसना बस यात्रा के दौरान बस के अन्दर हो रही हरकतों का डटकर सामना करती है। यहां तक की दलाल पर मुक्के का प्रहार करके अपने विरोध को प्रकट करती है। कहानी का कुछ अंक इस प्रकार है–''जोसना ने बैग कंधे पर ठीक से लटकाया। दाईं हाथ की मुट्ठी बांधी, बाएं हाथ से आदमी के सिर के बाल पकड़े और तीन मुक्के लगाए।''[9] जोसना का तीव्र प्रतिकार बस पर बैठे अन्य यात्रियों खासकर महिला यात्रियों को प्रभावित कर पाता है या नहीं, यह कहानी उस पहलू तक छू नहीं पाती। जोसना की संवेदना का अतिक्रमण न कर पाना इस कहानी की अपनी सीमा है।

इस कहानी की समीक्षा करते हुए कथाकार रणेंद्र लिखते हैं–''रोज दी के इस संग्रह में एक छोटी कहानी है 'गंध'। छोटी–सी यह कहानी अत्यन्त ही प्रतीकात्मक है। यह जोर से कुछ नहीं बोलती सिर्फ इशारा करती है। यह इशारा करती है मानव व्यापार की ओर, गैर–कृषि दिनों में गांव के युवक–युवतियों को रोजगार के नाम पर फुसलाकर बाहर ले जाने की प्रक्रिया की ओर, जिसमें गांव से निकली दस लड़कियों में से दो लड़कियां सदा–सदा के लिए खो जाती हैं, कभी लौटकर नहीं आतीं। उनके पदचिह्न उनके गांवों की तलाश करते रह जाते हैं।''[10] झारखण्ड में आज भी मानव तस्करी हो रही है। गांव से निकलीं लड़कियों में से कुछ लड़कियां सदा के लिए खो जाती हैं। कभी लौटकर नहीं आतीं। गांव में मजदूरी के उद्देश्य से निकली युवतियों के साथ बाजारू संस्कृति किस प्रकार व्यवहार करती है, उसी एक तथ्य पर यह कहानी केन्द्रित है। यह कहानी गरीबी से लाचार, रोजगार की विवशता के मारे आम जनता को प्रतिकार से रोकती है। यह सन्देश पाठक को सोचने–विचारने पर विवश करता है।

वर्तमान समय में आदिवासी समाज में लिंग के आधार पर जो भेद–भाव है, उसे लेखिका ने 'पगहा जोरी–जोरी रे घाटो' कहानी के पात्र 'दया' के

माध्यम से दिखाया है। यह कहानी स्त्री शिक्षा पर जोर देती है तथा झारखंडी समाज में व्याप्त पितृसत्ता का बखूबी उल्लेख करती है। इनकी कहानियों में नारीवादी चेतना को देखा जा सकता है। यह नारीवाद पुरुष विरोधी नारीवाद नहीं है बल्कि पुरुषों द्वारा बनाई गई व्यवस्था का विरोधात्मक नारीवाद है। नारीवाद के सम्बन्ध में वीरभारत तलवार लिखते हैं–''यह बात सही है कि रोज केरकेट्टा के अन्दर प्रखर नारीवाद विरोधात्मक चेतना मौजूद है। लेकिन वह पुरुष विरोधी नारीवाद नहीं है, बल्कि पुरुषों की बनाई व्यवस्था विरोधी नारीवाद है। इसलिए एक नारीवादी लेखिका की कसौटी, सिर्फ यही नहीं होती है कि उसने स्त्री के प्रश्नों को कितनी गहराई से महसूस किया, बल्कि एक लेखिका, एक रचनाकार की एक कसौटी यह भी है कि वो पुरुष की मानसिकता का कितना सही चित्रण करती है?''[11]

इस कहानी में दया की जो लड़ाई है न्याय की लड़ाई है। अपने अधिकार की लड़ाई है। स्त्री पक्ष की लड़ाई है। वह भी अपने भाईयों की तरह पढ़ना चाहती है पर उसे पढ़ाया नहीं जाता क्योंकि वह एक लड़की है। इसका एक कारण उस परिवार की गरीबी भी हो सकती है। हर वर्ष कॉपी–किताब खरीदने के लिए एक किसान को अनाज बेचना पड़ता है। आज भी पुरुषवादी समाज में कई स्थानों पर लड़कियों को शिक्षा से दूर रखा जाता है या कुछ की शिक्षा दिलाई जाती है। इस कहानी (पगहा जोरी–जोरी रे घाटो) में दया अपने परिवार वालों से संघर्ष करती है। परिवार के माता–पिता उसे स्कूल जाने की इजाज़त नहीं देते फिर भी उसके मन में पढ़ने के प्रति तीव्र उत्कंठा है। जानवर चराने के लिए गई दया स्कूल के पास के मैदान में जानवरों को छोड़कर खिड़की से ब्लैकबोर्ड को ध्यान से देखती रहती है और अध्यापक द्वारा बताए गए एक–एक बात को सीख लेती है।

अपने हक को पाने के लिए दया घर वालों से विद्रोह करती है। दया मां से पढ़ने के लिए हठ करती है, तो मां कहती है–''पढ़ के क्या करेगी। विवाह होगा तो ससुराल में भी चूल्हा फूंकेगी। काम सीखो बेटी। सिखलाही बहू को सास भी प्यार नहीं करती। सास को तो कमनी बहू चाहिए। पागल मत बनो।''[12] दया का अपने परिवार के सामने खड़ा होना स्त्री संकल्प की ओर संकेत है। इस तरह रोज केरकेट्टा ने कहानियों के माध्यम से आदिवासी जीवन के साथ ही साथ स्त्री जीवन और संघर्ष को रेखांकित किया है। कहानियों के अध्ययनोपरांत पाठक झारखण्ड के आदिवासी समाज में प्रचलित रीति–रिवाज, त्योहार, स्त्री शिक्षा, स्त्री शोषण, स्त्री प्रतिकार इन सब बातों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। रोज केरकेट्टा ने झारखण्ड के वर्तमान परिदृश्य को पाठक के सामने हू–ब–हू रखा है। तथा आदिवासी स्त्री के जीवन संघर्ष को बखूबी व्यक्त किया है।

संदर्भ–स्रोत

1. आधुनिक महिला लेखन, रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 5
2. अरावली उद्घोष, संपादक : जनक सिंह मीणा, अप्रैल 2013, अंक 99, पृ. सं. 29
3. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो (समीक्षकों की नजर में), रोज केरकेट्टा, पृ.सं. 7
4. रोज केरकेट्टा, पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, पृ. सं. : 15
5. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो (समीक्षकों की नजर में), रोज केरकेट्टा, पृ. सं. : 18
6. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, रोज केरकेट्टा, पृ. सं. : 23
7. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, रोज केरकेट्टा, पृ. सं. : 23–24
8. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, रोज केरकेट्टा, पृ. सं. : 23–24
9. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, रोज केरकेट्टा, पृ. सं. : 52
10. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो (समीक्षकों की नजर में), रोज केरकेट्टा, पृ. सं. : 9
11. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो (समीक्षकों की नजर में), रोज केरकेट्टा, पृ. सं. : 26
12. पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, रोज केरकेट्टा, पृ. सं. : 139

सम्पर्क

इन्द्रदेव शर्मा
शोध छात्र
हैदराबाद केन्द्रीय
विश्वविद्यालय, हैदराबाद

पहाड़ी समाज की सामाजिक संरचना

अंजली जोशी

प्राचीन काल से ही हिमालय का पर्वतीय क्षेत्र वर्तमान उत्तराखंड अपने वैशिष्ट्य के कारण प्रसिद्ध रहा है। यह भू–भाग ऋषि–मुनियों की तपोस्थली होने के साथ–साथ देवों का निवास स्थान भी रहा है। अतः उत्तराखंड देवभूमि के नाम से भी जाना जाता है। अपनी प्राकृतिक सुषमा के कारण यह स्थान हमेशा से आकर्षण का केन्द्र बना रहा।

9 नवम्बर 2000 को भारत के 27वें राज्य के रूप में उत्तरांचल नामक नए राज्य की स्थापना हुई। देहरादून इसकी अस्थायी राजधानी बनाई गई। जनवरी 2007 को केन्द्र सरकार द्वारा 'उत्तरांचल' का नाम बदलकर उत्तराखंड कर दिया गया। यह नया राज्य दो प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त है–'कुमाऊं मंडल तथा गढ़वाल मंडल'। इन दोनों मंडलों में कुमाऊं मण्डल के अन्तर्गत पिथौरागढ़, चम्पावत, बागेश्वर, अल्मोड़ा, नैनीताल और उधमसिंह नगर तथा गढ़वाल मण्डल के अन्तर्गत चमोली, पौढ़ी गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, रूद्रप्रयाग, उत्तरकाशी, देहरादून तथा हरिद्वार जिले आते हैं। उत्तरांचल में 13 जनपद, 78 तहसीलें, 95 विकास खंड, 75 छोटे–बड़े नगर तथा 16, 828 गांव हैं।''[1] प्रशासनिक रूप से 1960 से पूर्व गढ़वाल के जिले भी कुमाऊं प्रमंडल में सम्मिलित थे, फिर गढ़वाल का अलग प्रमंडल हो गया, परन्तु 9 नवम्बर को कुमाऊं, गढ़वाल, हरिद्वार तथा ऋषिकेश इन सभी को मिलाकर नए राज्य उत्तरांचल का निर्माण किया गया।

पहाड़ी समाज की सामाजिक संरचना

भारतीय समाज की संरचना में वर्ण, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, परिवार समूह आदि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके अभाव में भारतीय समाज आकार ग्रहण नहीं कर सकता। सामाजिक संरचना के सम्बन्ध में मार्शल जोन्स ने कहा है कि सामाजिक संरचना वह स्थिति है, जिसमें कि समाज की विभिन्न क्रियाशील ईकाईयां आपस में तथा समग्र समाज के साथ एक अपूर्ण ढंग से सम्बन्धित होती हैं।''[2]

तात्पर्य यह है कि समाज की विभिन्न इकाइयों जैसे व्यक्ति, परिवार, सम्प्रदाय आदि के व्यवहार व क्रियाओं को हम समाज से भिन्न नहीं मान सकते क्योंकि ये आपस में एक–दूसरे के सहयोगी हैं। यह अलग बात है कि इनमें कभी–कभी संघर्ष भी होते रहते हैं परन्तु फिर भी ये सब समग्र के संयुक्त भाग हैं जिसके फलस्वरूप समाज का निर्माण किया जाता है।

श्यामाचरण दूबे सामाजिक संरचना की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं–''पारम्परिक हिन्दू समाज की संरचना की कुछ व्यापक विशेषताएं हैं, जो पूरे भारत में एक समान है। वस्तुतः उनका प्रभाव उन समुदायों पर भी देखा जा सकता है जो अन्य धर्मों के अनुयायी हैं। ये विशेषताएं हैं–प्रथम पारम्परिक हिन्दू समाज जन्मना प्रस्थिति में विश्वास करता रहा है। द्वितीय– हिन्दू समाज सोपानबद्ध है, तृतीय– प्रस्थिति मूल्यांकन का मानदंड आर्थिक या राजनीतिक नहीं बल्कि मुख्यतः आनुष्ठानिक था, चतुर्थ – पुरूषार्थो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) अर्थात् जीवन के लक्ष्यों की अवधारणा थी, पंचम जीवन के इन चार लक्ष्यों से सम्बन्धित जीवन के चार आश्रम थे। ब्रह्मचर्य (विधार्थी जीवन), ग्राहस्थ (गृहस्थ जीवन), वानप्रस्थ (संन्यासी जीवन) तथा

संन्यास (परिवार तथा लौकिक चिन्ताओं से मुक्ति), छठा पारम्परिक हिन्दू धर्म के ऋण (कर्ज–दायित्वों) की धारणा है और अन्तिम कर्म का सिद्धान्त हिन्दू धर्म का आधार बना रहता है।''[3]

उपरोक्त सिद्धान्त भारत की बहुसंख्यक जनता के सामाजिक ढांचे के विचारधारात्मक आधार हैं। लेकिन ये विशेषताएं परम्परा और ग्रन्थों के अनुसार हैं, इनका सामाजिक यथार्थ से सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं। बदलते हुए समय के साथ इनमें पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं परन्तु फिर भी अनेक हिन्दू यह विश्वास करते हैं कि ये विशेषताएं आज भी कायम हैं।

जाति संरचना – प्राचीन समय में भारतीय संस्कृति और सामाजिक संगठन का आधार वर्ण–व्यवस्था थी। कार्य तथा श्रम विभाजन के आधार पर सम्पूर्ण समाज को चार भागों में विभक्त किया गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। रामविलास शर्मा के अनुसार चातुर्वर्ण्य संसार में प्रत्येक समाज की विशेषता है। इसमें सम्पत्ति का स्वामी भू–स्वामी वर्ग होता है। संस्कृति और शिक्षा का काम पुरोहित वर्ग के हाथ में रहता है। सामन्तों के साथ उनके अधीन रहकर या उनका सहयोगी बनकर व्यापारी वर्ग काम करता है। समाज के शेष सदस्य खेती, कारीगरी आदि के द्वारा इन द्विजों की सेवा करते हैं।''[4] इस व्यवस्था का आधार विशुद्ध रूप से कर्म था, किन्तु कालान्तर में जब वर्णव्यवस्था का आधार कर्म और गुण के बदले जन्म हो गया, तो वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गई और इसके नियम भी अत्यन्त कठोर हो गए। दूसरी जातियों के साथ भोजन और सामाजिक व्यवहार पर कठोर प्रतिबन्ध लग गए और उनका आधार भी जन्म माना जाने लगा। परवर्ती युगों में सामाजिक संगठन और सामाजिक संरचना की यह प्रक्रिया और भी जटिल होती गई।

उत्तराखंड का सामाजिक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यहां आदिम निवासियों के अतिरिक्त बाहर से बहुविध जनजातियां आती रही हैं, जिन्होंने यहां के लोक–जीवन को प्रभावित किया है। ''उत्तराखंड के निवासियों के रूप में प्राचीन ग्रन्थों में कोल, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नाग, किरात, खस, तंगण आदि पर्वतीय जातियों का उल्लेख आता है। इनमें से कुछ जातियों के डोम, अंत्यज, आदि भी मिलते हैं। कालान्तर में हूण, शक, चीण, यवन आदि जातियां भी आ मिलीं, कत्यूरी, चंद पवार आदि जातियों का आवागमन भी यहां होता रहा है।''[5]

पहाड़ी क्षेत्र की जातिगत संरचना कुछ इस प्रकार है कि वहां सीमित जातिगत विभाजन है इसलिए हर जाति अलग–अलग टुकड़ों में बंटी हुई है। निश्चय ही यह बंटवारा मूलतः आर्थिक और कुछ हद तक सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ जुड़ा हुआ है, जैसा कि प्रायः विश्व के अन्य क्षेत्रों में देखा जाता है। मुख्य रूप से कुमाऊं में केवल तीन जातियां हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा दलित। वैश्य यहां नाममात्र के लिए है। माना जाता है कि इस क्षेत्र के मूल निवासी दलित थे, शेष दोनों ही सवर्ण जातियां बाहर से आईं।''[6]

उत्तराखंड में ब्राह्मणों की कई उपजातियां पाई जाती हैं। ''पंडित बद्रीदन्त पांडे ने राजा रूपचन्द्र के समय में बैठी समिति का उल्लेख करते हुए कूर्मांचली ब्राह्मणों की सूची में ब्राह्मणों की 150 जनजातियों का विवरण दिया है।''[7] उत्तराखंड के ब्राह्मणों को मुख्यतः 4 श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. प्राचीन ब्राह्मण – वे ब्राह्मण इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं, जो अपने–अपने गांवों के नामों और व्यवसायों के आधार पर प्रसिद्ध हैं।
2. कत्यूरी, पवार और चंद शासकों के समय में आए ब्राह्मण
3. वृत्ति वाले ब्राह्मण
4. कठुआ ब्राह्मण – ये ब्राह्मणों की निम्नतम जाति मानी जाती है। ये ब्राह्मण राजपूतों की भांति हल चलाते हैं। क्षत्रियों के लिए 'राजपूत' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। गढ़वाल तथा कुमाऊं में इनकी 2,500 से भी अधिक उपजातियां हैं। प. हरिकृष्ण रतूड़ी ने राजपूतों (क्षत्रिय) की दो ही श्रेणियां मानी हैं–क्षत्रिय राजपूत और खस राजपूत। 116 जातियों की गणना क्षत्रिय राजपूतों में कर शेष राजपूतों को खस राजपूत माना गया है, इनमें रावत, नेगी, बिष्ट, भंडारी आदि प्रमुख हैं।''[8]

पहाड़ी क्षेत्र की जातिगत संरचना कुछ इस प्रकार है कि वहां सीमित जातिगत विभाजन है इसलिए हर जाति अलग–अलग टुकड़ों में बंटी हुई है। निश्चय ही यह बंटवारा मूलतः आर्थिक और कुछ हद तक सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ जुड़ा हुआ है, जैसा कि प्रायः विश्व के अन्य क्षेत्रों में देखा जाता है। मुख्य रूप से कुमाऊं में केवल तीन जातियां हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा दलित। वैश्य यहां नाममात्र के लिए है। माना जाता है कि इस क्षेत्र के मूल निवासी दलित थे, शेष दोनों ही सवर्ण जातियां बाहर से आईं।''[6]

वैश्य–उत्तराखंड में वैश्य वर्ण के लोगों की संख्या बहुत कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो इनकी संख्या नगण्य हैं। इनके लिए मुख्यतः 'व्यापारी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में बाहर से आकर कुछ वैश्य वर्ग के लोग उत्तरांचल में जाकर बस गए हैं। इनमें अग्रवाल जाति प्रमुख है।

शूद्र – प्राचीन समय में शूद्र, डोम या अंत्यज कही जाने वाली जातियों को अब शिल्पकार कहा जाता है। हरिजन वर्ग के अन्तर्गत मोची, शिल्पकार, खेतिहर मजदूर आदि आते हैं। उत्तरांचल में शिल्पकारों की भी अनेक उपजातियां हैं, जिनमें परस्पर ऊंच–नीच का भेदभाव विद्यमान है।

इन जातियों के अतिरिक्त उत्तराखंड में पांच जनजातियां भी निवास करती हैं–राजी, थोटिया, थारू, बोक्सा और जौनसारी। इन पांचों जनजातियों को सन् 1967 में संवैधानिक रूप से 'अनुसूचित जनजाति' घोषित किया गया।

उत्तराखंड की सामाजिक व्यवस्था कृषि पर आधारित है। सामाजिक दृष्टि से उत्तराखंड का समाज दो वर्गों में विभक्त है। 1. भूमिपति वर्ग और भूमिहीन वर्ग। कुछ समय पहले तक यहां मालगुजारी प्रथा प्रचलित थी। उत्तरांचल का प्रत्येक परिवार वर्ष भर कृषि कार्य से जुड़ा रहता है और एक फसल में 6 महीने से लेकर साल भर तक का अनाज उत्पन्न कर लेता है, जनसंख्या का लगभग 5 प्रतिशत भाग भूमिहीन है जो मुख्यतः हस्तशिल्प और कृषि से सम्बन्धित सहायक शिल्प पर निर्भर है। डॉ. बटरोही लिखते हैं – ''कृषि का अधिकांश भाग असिंचित होने के कारण नैसर्गिक दृष्टि पर निर्भरता, कृषि से प्राप्त आय को अनिश्चित कर देते हैं। ग्रामीण वर्ग में 86 प्रतिशत कार्यकर्ता कृषि से, 44 प्रतिशत कुटीर उद्योगों से, 3 प्रतिशत व्यापार–वाणिज्य से, 5.5 प्रतिशत सेवा क्षेत्रों से एवं 1. 5 प्रतिशत अन्यान्य क्षेत्रों से जीविकोपार्जन करते हैं।''[9] पहाड़ी क्षेत्रों में कृषियोग्य भूमि की सिंचाई के साधनों का अभाव है। ढलान को काटकर सीढ़ीदार खेतों में कृषि की जाती है। उत्तराखंड के लगभग 88 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों के अन्तर्गत आते हैं। मुख्य व्यवसाय कृषि होने पर भी कृषि से प्राप्त होने वाली आय नौकरी और व्यापार से भी कम है। अतः अधिकांश लोगों को रोजगार की तलाश में गांव से शहर की ओर पलायन करना पड़ता है।

कृषि के अतिरिक्त पशुपालन भी यहां के निवासियों का प्रमुख आर्थिक साधन है। ये पशु इनके जीवन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक स्थिति दयनीय होने पर यहां के निवासी दूध बेचकर आजीविका चलाते हैं। गाय प्रायः सभी घरों में पाली जाती है। किन्तु भैंस कुछ ही समृद्ध घरों में नजर आती हैं। बैल कृषि के लिए अत्यधिक आवश्यक हैं उसके अभाव में कृषि कार्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

उत्तराखंड की प्रकृति, भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक वातावरण ने लोकजीवन को बहुत प्रभावित किया है। जलवायु कहीं अत्यधिक शीत है, तो कहीं अत्यधिक उष्ण। घाटियां दिन में बहुत गरम रहती हैं और रात में ठंडी। यातायात और आवागमन की कठिनाई के कारण एक घाटी के लोग दूसरी घाटी के लोगों से नित्य संपर्क नहीं रख सकते। स्थानीय प्रकृति के सौन्दर्य तथा हिमालय की नैसर्गिक सुषमा को राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक ''हिमालय परिचय भाग 1' में उद्धृत किया है–

''मैंने बहुतेरे यूरोपीय पहाड़ों को देखा है, किन्तु अपनी विशालता तथा सौंदर्य में उनमें से कोई हिमालय की तुलना में नहीं आ सकता। कुमाऊं की चोटियों में यद्यपि कोई उतनी ऊंची नहीं है जितनी की हिमालय की श्रेणी के दूसरे भागों की कुछ

चोटियां–यहां की केवल दो ही चोटियां पच्चीस हजार फुट से अधिक ऊंची हैं। किन्तु गढ़वाल, कुमाऊं, हिमालय श्रेणी की औसत ऊंचाई सबसे बढ़कर है। 20 मील तक लगातार इसके कितने ही शिखर 22, 000 से 25, 000 फुट तक ऊंचे हैं।''[10]

पारिवारिक व्यवस्था के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि पहाड़ में पितृ–सत्तात्मक व्यवस्था है। धार्मिक कृत्यों में पुरुषों को ही महत्व दिया जाता है, किन्तु आर्थिक साधन जुटाने में स्त्री–पुरुष समान रूप से सहयोग देते हैं। उत्तराखंड में पारिवारिक संगठन के दर्शन होते हैं। विवाह, उत्सवों, पूजा आदि के अवसर पर गांव के सभी लोग एकजुटता का परिचय देते हैं। संयुक्त परिवारों की संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। कृषि की अधिकता के कारण यहां संयुक्त परिवारों की संख्या अधिक है। ''यहां समाज के 2.25 प्रतिशत एक सदस्यीय, 25 प्रतिशत केन्द्रमूलक, 38. 5 प्रतिशत पितृ श्रृंखला के तथा 35.5 प्रतिशत संयुक्त परिवार हैं।''[11] वर्तमान परिस्थितियों में परिवर्तन आने से संयुक्त परिवार टूट रहे हैं।

उत्तराखंड में आर्थिकोपार्जन के लिए पुरुषों को बाहर जाना पड़ता है जिससे यहां की स्त्री का जीवन कठिनाईयों से भर जाता है। सामाजिक सन्दर्भ में पहाड़ी नारी का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। पूरनचन्द जोशी के अनुसार ''भूमि, जलस्रोत, जंगल, पर्यावरण आदि पर नवधनाढ्य और नव प्रभुत्वमान बाहरी वर्ग आक्रामक रूप से हावी होते जा रहे हैं और जनसाधारण आत्मरक्षात्मक प्रतिक्रिया में आजीविका के संघर्ष में हारते हुए अपने ही जन्मस्थान से वृहत् पैमाने पर विस्थापन के शिकार होते जा रहे हैं। पुरुष समुदाय के बड़े पैमाने पर विस्थापन और परिवार के विघटन की त्रासदी की शिकार वास्तव में स्त्रियां हैं जिन्हें घर और बाहर की सभी जिम्मेदारियां एक साथ निभानी पड़ती हैं।''[12] अपने पति के घर छोड़ने और प्रदेश में परिवार के बिना जीवन व्यतीत करने की विवशता को पर्वतीय नारी पूरी तरह महसूस करती हैं और अकेले जीवन संघर्ष से श्रान्त और दुखी अपने जीवन साथी को याद करती रहती हैं। घर और बाहर दोनों स्थानों का बोझ अपने कंधों पर उठाए वह अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करती हैं। पर्वतीय श्रमकार्यों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की अधिक परिश्रम एवं दैनिक कार्यों की विविधता ने यहां 'बहुविवाह' की प्रथा को बढ़ावा दिया है। एक पुरुष की जितनी अधिक पत्नियां होंगी उतने ही उसके कृषि आदि कार्य सुचारू रूप से चलेंगे। इस आर्थिक स्थिति ने बहुविवाह, बहुपत्नी प्रथा के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कुछ वर्ष पूर्व तक की स्थिति के लिए अल्मोड़ा गजेटियर (1928) में लिखा गया है–''अल्मोड़ा की सामाजिक विशेषताएं स्त्री के सामाजिक स्तर से सम्बन्धित हैं। बहुपत्नीत्व सामान्य प्रथा नहीं है किन्तु प्रत्येक सम्पन्न व्यक्ति जो दो पत्नियां रखता है दो विवाह कर लेता है। विवरण की सत्यता इन आंकड़ों से प्रकट होती है कि जनसंख्या के अनुसार 1, 11, 800 विवाहित पुरुषों के पीछे 1, 23, 940 विवाहित स्त्रियां थीं।''[13]

स्त्री के श्रमिक मूल्य के कारण पति के मरने पर वह परिवार से बाहर नहीं जा सकती। उसको उसके देवर अथवा सगा देवर न होने पर किसी निकट चचेरे भाई के घर भेज दिया जाता है, इसके लिए कोई संस्कार नहीं किया जाता। इस प्रथा के समर्थन में लोकोक्ति है कि ऊपर की दीवार गिरती है तो वह नीचे की दीवार के सहारे पड़ती है।''[14] इस प्रथा को सम्मानजनक माना जाता है। परन्तु यदि सगा देवर नहीं अथवा कोई सगा संबंधी भी नहीं तो ऐसी स्थिति में उसे बाहर के व्यक्ति के घर इस प्रतिबन्ध के साथ रहने की अनुमति मिल जाती है कि वह व्यक्ति उस विधवा का भरण–पोषण करेगा। विधवा का ऐसा रक्षक 'टेकुआ' कहा जाता है। टेकुआ करने की यह प्रथा चरित्रहीनता मानी जाती है। संघर्षमय जीवन व्यतीत करने वाली पहाड़ी नारी के जीवन से अनमेल विवाह, बाल विवाह, वैधव्य आदि अनेक प्रश्न जुड़े हैं। कृषि कार्य की प्रमुखता और महत्व के कारण पहाड़ी कन्याओं का विवाह बाल्यावस्था में कर देते हैं। आर्थिक दयनीयता के कारण निर्धन परिवारों में शुल्क विवाह, दामतारों, सरौल (डोली विवाह) अथवा अनमेल विवाह भी प्रायः देखने को मिलते हैं।

उत्तरांचल के सभी समाज धर्मप्रवण हैं। स्थानीय देवी–देवताओं और धर्म पर सबकी अगाध श्रद्धा और आस्था है। व्यक्ति के जन्म से लेकर मरण तक का प्रत्येक क्षण धर्म से अनुशासित और अनुप्राणित रहता है। वैदिक और पौराणिक देवताओं तथा शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध आदि धर्मों का स्मरण यदा–कदा पूजा–उपासना तथा कर्मकाण्डों के अवसर पर ही किया जाता है, जबकि अवैदिक स्थानीय अथवा क्षेत्रीय देवताओं का स्मरण प्रत्येक कार्य के करने से पूर्व किया जाता है। इस वर्ग के देवताओं में इष्ट, कुल

देवता तथा भूमिया देवता आते हैं। ''स्थानीय देवताओं में 'ग्वेल' नाम के देवता हैं, 'नरसिंह राह बताने वाले 'कलविष्ट' आतताइयों का दमन करने वाले, भूमियां भूमि के रक्षक तथा देवी भगवती रिद्धि–सिद्धि दाता मानी जाती हैं। कुमाऊं तथा गढ़वाल का शायद ही कोई ऐसा परिवार हो जिसका अपना कोई ईष्ट अथवा कुल देवता न हो।''[15] यहां के निवासी मुख्य रूप से शैव और शान्त धर्मों के अनुयायी हैं। वैष्णव धर्म यहां परवर्ती समय में प्रविष्ट हुआ। ''सम्पूर्ण कुमाऊं में 350 से भी अधिक मन्दिर हैं जिनमें 35 वैष्णव मन्दिरों के अतिरिक्त सभी मंदिर शैव और शाक्तों के हैं। शक्ति मंदिरों की संख्या लगभग 60 और शैव मंदिरों की संख्या लगभग 255 हैं।''[16] प्रसिद्ध शिव मंदिरों में बागेश्वर, भीमेश्वर, जागेश्वर, हंतेश्वर आदि माने जाते हैं। इसी प्रकार शक्ति की भी कई रूपों में पूजा की जाती है। यथा नंदा, बाराही, पार्वती, गौरी, स्याही देवी आदि।

धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा और आस्था के साथ–साथ भूत–प्रेत, तन्त्र–मन्त्र, जादू–टोना, शुभ–अशुभ पर विश्वास यहां के समाज को अन्धविश्वास की हद पर लाकर खड़ा कर देता है। देवी–देवताओं की संतुष्टि के लिए कई निरीह पशुओं की बलि दी जाती है। 'जागर' नृत्य उत्तराखंड के धार्मिक विश्वासों का जीता–जागता प्रतीक है, जिसमें विशेष नर्तकों (घोड़ा) के शरीर में लोक देवताओं अथवा स्थानीय देवताओं का अवतरण माना जाता है। जागर में ढोल–दमानों की ध्वनि के बीच देवता अवतरित होते हैं। घर–बाहर के जागरों से कांसे की थाली बजाकर उसका अवतरण कराया जाता है। यह नृत्य केवल रात्रि में होता है। पहले बाईस रातों का जागर नृत्य होता था, जिन्हें 'बैसी' कहते थे। नन्दादेवी की बैसी प्रसिद्ध जागर है जिसकी झलक अल्मोड़ा नन्दा देवी के मेले में दिखती है। जागर नृत्य कुमाऊं तथा गढ़वाल दोनों क्षेत्रों का धार्मिक नृत्य है।

अत्यन्त अभावों के बाद भी सामाजिक एकता उत्तरांचल के जीवन का अभिन्न अंग है। लोग आपस में मेल से रहते हैं। हालांकि वर्ण व्यवस्था तथा छुआछूत की भावना यहां अभी भी देखने को मिलती है। नित्य धोती बदलकर रसोई बनाना, शूद्रों का स्पर्श किया हुआ न खाना, रजस्वला स्त्री को अछूत समझना आदि कट्टर रिवाज अभी भी गांवों में प्रचलित हैं। शिक्षा के प्रचार से नागरीय जीवन में इन परम्पराओं तथा मान्यताओं को बहुत हद तक नकारा गया है। परन्तु गांवों में अभी भी ये रिवाज प्रचलित हैं। उत्तराखंड के लोगों में भाईचारे की भावना सभी में विद्यमान है। सामूहिक रूप से उत्सव व त्योहार मनाना, विकास कार्यों में एक दूसरे की मदद करना, सामूहिक निर्माण कार्य करना इस बात का द्योतक है कि समाज के सभी वर्ग चाहे वे किसी भी जाति अथवा धर्म के हों, सामाजिक उत्थान तथा सामाजिक एकता के लिए मिलजुल कर साथ चलना चाहते हैं।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. डॉ. देवसिंह पोखरिया–उत्तराखंड लोक संस्कृति और साहित्य, पृ. 3
2. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, पृ. 15
3. श्यामाचरण दूबे–भारतीय समाज, पृ. 39–40
4. रामविलास शर्मा–भाषा और समाज, पृ. 238
5. देवसिंह पोखरिया–उत्तराखंड लोक संस्कृति और साहित्य, पृ. 6
6. लक्ष्मण दत्त 'बटरोही (स. कुमाऊंनी संस्कृति (मध्यमवर्गीय कुमाऊंनी समाज के बहाने अतीत के अनुभव यात्रा लेख), पृ. 24
7. बद्रीदत्त पाण्डे–कुमाऊं का इतिहास, पृ. 580
8. हरिकृष्ण रतूड़ी – गढ़वाल का इतिहास, पृ. 88
9. लक्ष्मण दत्त बटरोही–कुमाऊंनी संस्कृति, (मध्यमवर्गीय कुमाऊंनी समाज के बहाने अतीत के अनुभव यात्रा लेख), पृ. 122
10. राहुल सांकृत्यायन–हिमालय परिचय भाग 1; पृ. 10
11. पूरनचंद्र जोशी–उत्तराखंड के आइने में हमारा समय, पृ. 227
12. लक्ष्मण दत्त बटरोही–कुमाऊंनी संस्कृति, पृ. 122–123
13. यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक–संस्कृति संगम उत्तरांचल (कुमाऊं गढ़वाल की लोक–संस्कृति और पर्वतीय भाषा के उद्भव और विकास का इतिहास), पृ.11
14. वही, पृ. 12
15. डॉ. पुष्पलता भट्ट–कुमाऊंनी लोक साहित्यः संस्कृति भाषा और साहित्य–पृ. 89
16. डॉ. त्रिलोचन पाण्डे–कुमाऊंनी लोक साहित्य की पृष्ठभूमि, पृ. 71

संपर्क

पीएचडी हिन्दी

जामिया मिल्लिया इस्लामिया (शोधरत), दिल्ली

9910853163

कच्ची कॉलोनियों का खेल

मुकुल रंजन

आजकल दिल्ली की कच्ची कॉलोनी में खूब हलचल है। लोग खूब खुश दिखाई दे रहे हैं। क्यों ना हो! जिन कॉलोनी में गली, नाला, पानी की पाईप लाइन नहीं थी उन कॉलोनियों में इन सभी चीजों की व्यवस्था की जा रही है। लोगों का एक ही गहना–पूंजी था वह है उसकी जमीन। जब भी चुनाव का समय आता है इन कॉलोनियों में कुछ काम जरूर होता है। नेतागण इन लोगों की कमजोरियों से खूब अवगत हैं। नेता जानते हैं यह इनका बहुत बड़ा वोटबैंक है। मैं किराड़ी विधानसभा क्षेत्र में रहता हूं। यहां के एसएल अनिल झा हैं। इनकी जीत के कारण इन्हीं कच्ची कॉलोनी के लोग हैं। यह बात अनिल झा भी जानते हैं और यहां के निवासी भी।

इस कच्ची कॉलोनी का खेल बहुत अजीब है। यहां भी वर्चस्ववादी लोग मकान टूटने का हवाला देकर कई गरीब लोगों के मकान खरीद लिए हैं। अब वही जमीन इतनी महंगी हो गई है कि वह इस जिन्दगी में उसे हासिल नहीं कर सकते। वे लोग अपने ही मकान में या उसके आसपास किराए पर रहते हैं। लोगों के दयापात्र हैं या उनकी बुराईयां रोज सुनते हैं।

आजकल दिल्ली सरकार की नई पेशकश आई हुई है। यह सुविधा सिर्फ (बीपीएल) लोगों के लिए है। इस योजना के अंतर्गत बीपीएल धारकों को एक गैस सिलेंडर कनेक्शन मुफ्त है। इस योजना का लाभ इन कच्ची कॉलोनियों के लोगों ने खूब उठाया है। यहां कई ऐसे घर हैं जो इस श्रेणी में नहीं आते हैं लेकिन इस योजना का लाभ उठा रहे हैं। जो लोग इस नई पेशकश के हकदार हैं वे खाली हाथ घर लौटते हैं। कौन है जो इन लोगों की बात सुनेगा?

गरीब ब्राह्मण की कोई वकालत कर भी देता है, तो उसके रिश्तेदार की दयनीय स्थिति उनकी झूठी इज्जत पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है। लेकिन उस गरीब रिक्शेवाला का कौन है जो उसकी वकालत करेगा? कुछ ही दिन पहले देखा, दिल्ली पुलिस का एक कांस्टेबल गरीब किरायेदार से ऐसे बात कर रहा था जैसे वह उसका कर्ज ले रखा हो और वह उसका मालिक हो। उसका रौब देखकर वह व्यक्ति साहेब कहके दुबक गया। उसका घबराना स्वाभाविक था।

सभी बीमारी का इलाज है। आज मैं मीनी बस से कहीं जा रहा था। एक स्टैण्ड पर बस ड्राइवर ने एक दिल्ली पुलिस वाले से कहा, भाई! थाने में रोटी नहीं मिलती। मैंने देखा, एक कांस्टेबल ठेले पर खाना पैक करा रहा था। यह दृश्य देखकर मैं सोचने लगा। तभी मेरे दोस्त ने कहा, ऐसा है यही कांस्टेबल शाम को इसके साथ शराब पीता है तभी ऐसी बात कर रहा है। आप सोच सकते हैं स्थिति कितनी जर्जर हो गई है। हर जगह गरीब पीसता है। यदि दलित गरीब है तो उसकी जिंदगी नरक से कम नहीं है।

जो लोग वर्चस्ववादी हैं उनके घर में कम से कम गैस के एक या दो सिलेंडर कनेक्शन हैं लेकिन जो व्यक्ति आपका अधिकार नहीं छीन पा रहा है उनके यहां एक भी सिलेंडर नहीं है। उनका कोई मां–बाप नहीं है। वही परिवार सबसे ज्यादा काला–बाजारी का शिकार बनता है। उनके पास कोई विकल्प नहीं है।

पिछले सप्ताह (जनवरी का पहला सप्ताह) एक–दो दिन कड़ाके की ठंड पड़ी। सभी के काम में कुछ न कुछ रियायत थी। मैंने तकरीबन नौ बजे के आसपास एक लड़की को देखा, उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। सिर पर ईंट ढोये जा रही है। कारण कुछ भी हो लेकिन उसका शोषण इसकी वजह थी। मैंने यह बात उस समय कल्पना कर ली थी लेकिन आज शाम इसकी पुष्टि भी हो गई। आज कहीं भी सरकारी ठेका मजदूर शाम के छह बजकर पांच मिनट पर मजदूर ने अपना काम दिया। तभी ठेकेदार का पिछलग्गू आया और कहा, इस काम को खत्म करके जाना। तभी एक स्वर में 6 महिला मजदूर बोल उठीं, तब तो रात के आठ बज जाएंगे। ठेकेदार के चमचे ने कहा, कोई बात नहीं। मजदूरों ने कहा, हमलोग नहीं करेंगे। तब ठेकेदार ने कहा, तो अपना बोरिया बिस्तर–समेटो। कल से आने की जरूरत नहीं है। ये सारी घटना मैं देखता रहा। काम मेरे घर के सामने हो रहा था। मैंने ठेकेदार से कहा, सॉरी भाई इन लोगों को घर जाने दो। इनका समय भी हो गया। इतना शोषण मत करो। यह बात सुनकर ठेकेदार कुछ बोलनेवाला था, परन्तु उसने कुछ नहीं कहा और चुपचाप चला गया। मेरा भी पारा गरम हो गया, मैंने सभी मजदूरों से घर जाने को कह दिया। मैंने कहा, ये काम मेरे घर के आगे हो रहा है, ठेकेदार से कहना, घर के मालिक ने काम नहीं करने दिया। तभी तीन–चार महिला मजदूर एक–एक कर बोलने लगीं। हमलोग मध्यप्रदेश के रहनेवाले हैं। छत्तरपुर के निवासी हैं। सूखा दो–सौ रुपये मजदूरी मिलती है और राजमिस्त्री को तीन सौ रुपये। यहां हमलोग तंबू गाड़कर रहते हैं। आप ही बोलिए, इनकी वकालत कौन करेगा?

सचमुच गुजरात एक बार सबको घूमना चाहिए। खासकर उन लोगों को जो कहीं विशेष घूमने के इच्छुक होते हैं। यह अलग बात है कि यहां की राजनीति किसी न किसी वजह से हमेशा मीडिया के केन्द्र में चर्चित रहती है। लेकिन यहां प्रकृति की खूबसूरती निहारने लायक है। खूबसूरत मोर–मोरनियों के नृत्य और लंगूरों के आपसी रिश्ते कई जगह देखने को मिलते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यहां के अधिकांश लोगों में मानवीयता का गुण कूट–कूट कर भरा है। आपसी द्वेष या छल–कपट की भावना कुछ सीमित लोगों तक ही है। गुजरात की हरियाली निराली है। यहां की सड़क साफ–सुथरी, चौरस और भीड़ मुक्त है। सड़क के किनारे बनी पटरी पर सीमेंट का बेंच भी बहुत खूबसूरत है।

मैं एमफिल पीएचडी को गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय में इसी वर्ष दाखिला लिया हूं। जब साक्षात्कार के लिए आया तो एक नजर में ऐसी खूबसूरत जगह को देखकर बहुत खुश हुआ। मन–ही–मन एक योजना भी तैयार कर ली। मन में ठान लिया यहां किसी तरह साक्षात्कार में सफल हो जाएं। बहुत कठिनाई से यहां भी सफलता हासिल हुई। अचानक एक बात फिर याद आई। मुझे जिस किसी भी वस्तु की इच्छा हुई वह निश्चित मिली लेकिन बहुत कठिनाई से। आमतौर पर मेरे साथी को वही वस्तु इतनी आसानी से मिलती है जिसका मैं आसानी से बयान नहीं कर सकता।

बहरहाल, यहां एक नई सुबह नए प्रदेश का एहसास रोज होता है। यहां के लोग सुबह–सुबह कप की प्याली में चाय पीते हैं। देखकर बहुत अच्छा लगता है। बचपन की वर्णमाला की किताब के पन्ने याद आ जाते हैं। जो कभी हमेशा कप के साथ प्याली का भी चित्र देखते थे लेकिन कभी उसका उपयोग होते कहीं नहीं देखा था। देखकर बहुत अच्छा लगता है। सोचता हूं तो महसूस होता है ऐसे ही तत्वों से बनी है भारत की विविधता। इतना ही नहीं यहां का नाश्ता और खाना भी सभी राज्यों से भिन्न है। आमतौर पर जो नाश्ता अन्य प्रदेशों में शाम को खाते हैं वही नाश्ता यहां सुबह में खाते हैं। सुबह का नाश्ता है बेसन से बनी पकौड़ी, चटनी और जलेबी। यहां दिन या रात के खाने में सब्जी और दाल में शक्कर का मिश्रण रहता है। स्वाभाविक है स्वाद मीठा होगा। मैं सुबह में जिस दुकान पर चाय पीता हूं उस दुकानदार से कहा, भाई तू चाय तो बहुत अच्छी बनाते हो लेकिन यहां का खाना मीठा क्यों होता है? उसने झट से जवाब दिया, भैया, यहां के लोग ही मीठे हैं। इसलिए सब चीजों में मीठा खाना पसंद करते हैं। यह उसका तर्क था। बहुत से

लोग इस जवाब को हंसी में उड़ा देते हैं। लेकिन सचमुच मुझे लगा यहां के आम लोग मीठे हैं। मीठा कहने का मेरा या उस दुकानदार का तात्पर्य है यहां के लोगों में मानवीयता है। उसने इस मानवीयता को अन्य संदर्भ से स्पष्ट किया।

आजकल महंगाई का हवाला देकर दुकानदार अपनी वस्तु को कई गुणा दामों पर बेचता है। इस बात का एक प्रमाण इस विश्वविद्यालय की कैंटीन की वस्तु से पता चलता है। यहां दिन या रात का खाना मात्र तीस रुपये में मिलता है। इस तीस रुपये में चावल, रोटी, दाल, सब्जी और सलाद मिलता है। सलाद सिर्फ एक बार मिलता है। लेकिन चावल, रोटी, दाल या सब्जी आप भरपेट खा सकते हैं। इतना ही नहीं यह खाना स्वच्छ व स्वादिष्ट भी होता है। सचमुच यहां का सादा खाना प्रशंसनीय है। इसका एक यह भी कारण है इसका संचालन एक मजदूर ही करता है। इस प्रदेश की इतनी सारी विशेषताएं होने के बावजूद यहां फिर भी कुछ कमी महूसस होती हैं। न सिर्फ मुझे मेरे कुछ साथी को भी इस कमी का खूब एहसास होता है। जब तक यहां दाखिला नहीं लिया, तब तक मन बहुत व्याकुल था कब दाखिला मिलेगा। दाखिला लेने के बाद जब से यहां रहने लगा मन अभी तक खुश नहीं हुआ। लेकिन बुद्धि ठीक इसके विपरीत है। जो यथार्थ भी है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यहां रहना भी निश्चित है।

मुझे जैसे ही मौका मिलता है, मैं शनिवार को आस्त्रम एक्सप्रेस पकड़कर दिल्ली आ जाता हूं। जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं मेरे साथी की भी यही समस्या है। इसलिए वह भी इस मौके को नहीं छोड़ता है। वह भी मेरे साथ होता है। इसी प्रकार एक साथी राजस्थान का है। जिस तरह हम लोगों को दिल्ली के प्रति लगाव है उसी प्रकार उस साथी को राजस्थान के प्रति लगाव है। ये साथी भी हमारे सभी यात्रा में साथ होते हैं।

दिल्ली की कई समस्याओं से मैं परेशान रहा। वहां का मौसम कभी अच्छा नहीं लगा। गर्मी में खूब गर्मी, सर्दी में खूब सर्दी। सिर्फ तीन दिन जमकर बारिश हो जाए तो दिल्ली में बाढ़ की स्थिति बन जाती है। दिल्ली में इतने वाहन हैं कि इसके क्या कहने! यदि एक वाहन बीच रास्ते पर थोड़ी देर के लिए खराब हो जाए तो कम से कम तीन किलोमीटर तक जाम लग जाता है। ऐसी भीड़ की स्थिति दिल्ली के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में है।

मेट्रो आने से पहले कहा जाता था कि जिस दिन मेट्रो आ जाएगी बसों में सवारी की संख्या कम हो जाएगी। कम से कम लगभग सभी को बैठने को सीट अवश्य मिलेगी। लेकिन समय गवाह है जिस दिन से मेट्रो आई है बस में सवारी की संख्या बढ़ी है। मैंने स्वयं भी अनुभव किया है कि आज से कुछ साल पहले बस में सवारी की अतिशय भीड़ सिर्फ सुबह और शाम होती थी। लेकिन आज स्थिति यह है कि दोपहर में भी खूब भीड़ होती है।

जो लोग दोपहिया वाहन चलाते हैं उनकी शर्ट और पेंट में जमे धूलकण से अंदाजा लगा सकते हैं कि दिल्ली में किस हद तक प्रदूषण है। इतनी सारी समस्याएं होने के बावजूद मेरा अनुभव यही कहता है कि जो व्यक्ति दिल्ली में कुछ वर्ष रह गया वह कहीं नहीं रह सकता है। बशर्ते जब तक उसे कोई बड़ी सफलता हासिल न हो।

मुझे तत्काल इतनी सुविधाओं के बावजूद दिल्ली की याद बहुत आती है। कभी–कभी दिल्ली में एक पोस्टर बराबर देखता रहा। उस पोस्टर पर लिखा रहता, 'दिल्ली मेरी जान'। तब मन ही मन कहता सब बकवास है। हालांकि मैं सात राज्य थोड़ा–बहुत घूम चुका हूं। जब वापस दिल्ली आता तो दिल्ली से अच्छा कई शहर का नाम लेता। लेकिन जब पांच साल तक रहने की योजना गुजरात में आई तो भी कुछ ज्यादा फर्क नहीं पड़ा। परन्तु जब रहने लगा तो एक बार फिर एहसास हुआ दिल्ली जैसी कोई नहीं।

संपर्क

कमरा संख्या : बी–234, गली नं. – 21
निठारी, बलजीत विहार, किरारी सुलेमाननगर
(आकाश सीनियर सेकंडरी मॉडल स्कूल के नजदीक)
दिल्ली–86, मोबाइल नं. 9953991306

विशेष रपट

आदिवासी विरासत की बहुभाषी दुनिया

रमणिका फाउंडेशन, अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच, भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू. नई दिल्ली में आई.सी.एस.एस.आर. के सहयोग से दिनांक 30 अक्टूबर–2015 से 01 नवंबर, 2015 के बीच एक तीन दिवसीय राष्ट्रीय आदिवासी सेमीनार, कहानी पाठ एवं पुस्तक प्रदर्शनी (मेला) का आयोजन किया गया। सेमिनार का स्थल था जे.एन.यू. का एस.एस.एस. I सभागार एवं कमिटी हॉल। इन तीन दिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार को कई सत्रों में बांटा गया था, जिसमें आदिवासी विषयक आलेखों तथा आदिवासी कहानियों का पाठ विशेष महत्व रखता है।

प्रथम दिवस, प्रथम सत्र

समय – 2:30 दोपहर से 6:00 बजे संध्या तक, दिनांक – 30.10.2015

विषय : आदिवासी साहित्य : समकालीन कहानी लेखन, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं से अनुवाद

अध्यक्ष : के.एम. मैत्री, शंकर लाल मीणा संचालन–सुनील कुमार 'सुमन' एवं नीतिशा खलको

हरि उरांव : आदिवासी एवं स्थानीय भाषाएं : अनुवाद के माध्यम से संवाद

श्री हरि उरांव ने कहा कि परंपरागत अनुवाद की भूमिका सीमित दायरे तक रही है। झारखंड की आदिवासी भाषाओं में श्रेष्ठ साहित्य उपलब्ध है जिसे अनुवाद के माध्यम से अन्य पाठकों तक पहुंचाया जा सकता है। अनुवाद ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा आदिवासी भाषाओं में अभिव्यक्त महत्वपूर्ण विचारों व मूल्यों को विश्व पटल पर लाया जा सकता है। अनुवाद विभिन्न संस्कृतियों को जोड़ने का सेतु सिद्ध हो सकता है।

हरि उरांव : चार भाई

हरि उरांव ने कुडुख भाषा की 'चार भाई' कहानी का पाठ किया। यह चार भाइयों के प्रेम और अपनेपन की कहानी है, जो एक दूसरे का दुख–दर्द बांटते हैं। संयुक्त परिवार के विघटन के दौर में आदिवासी समाज की ये कहानी प्रेरणास्पद है। आधुनिक युग में जहां परस्पर ईर्ष्या, द्वेष आगे बढ़ने की होड़ में भाईयों में भी प्रेम नहीं मिलता है, वहीं इस कहानी में आदिवासी समाज में एतवा, सोमरा, शनिया, बिरसु जैसे भाई भी मौजूद हैं, जिनके परस्पर प्रेम, त्याग, सहयोग की मिसाल हमें मिलती है। भाइयों में बंटवारा हो जाने के बाद भी एक–दूसरे की चिंता, परस्पर हित का भाव समावेशित रहता है, जिससे वे अपने–अपने धान के ढेर से एक–दूसरे के ढेर में डाल देते हैं। उनका मन नहीं बंटा तो अन्ततः धन का बंटवारा भी नहीं हुआ।

वेंकट नायक : तेलंगाना में बंजारा लोक साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

श्री वेंकट नायक ने लोक गीतों के कई प्रकारों का वर्णन करते हुए ओजस्वी लोक गीतों की चर्चा की और बताया कि ये लोकगीत देश के आदिवासियों का संगीत हैं–गीत हैं। मध्यप्रदेश दक्कन, छोटानागपुर में

गोंड–खंड, भील–संताल आदि लोग फैले हैं और इनके गीत और नाच प्रायः समूह में बड़े–बड़े दलों में गाए जाते हैं। ये सभी लोकगीत प्रायः गांवों और इलाकों की बोलियो में गाए जाते हैं। इस कारण ये बड़े महत्व के होते हैं। इन गीतों का आकर्षण है इनका राग और इनकी सफलता है इनकी समझी जा सकने वाली भाषा। ये गीत–स्त्री–पुरुष मिलकर गाते हैं।

पी.एन.सलामे : समकालीन गोंडी कहानियों, लोककथाओं, मिथकों व शौर्यगाथाओं का आकलन

श्री सलामे ने सबसे पहले आदिवासी शब्द की परिभाषा पर सवाल उठाया। उन्होंने कहा कि भारत के संविधान में भी इसे परिभाषित नहीं किया गया है। उन्होंने व्यवस्था दी कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से ऐसे समुदाय को आदिवासी कहा जाता है, जिसका अपना एक भूभाग और अपनी संस्कृति होती है। उनके अनुसार गोंडी समुदाय धरती का सबसे आदिम समुदाय माना जाता है। उन्होंने अपने आलेख में विभिन्न समकालीन गोंडी कहानियों, लोककथाओं, मिथकों और शौर्यगाथाओं का केवल आकलन ही नहीं किया बल्कि सोदाहरण उनकी व्याख्या भी की। उन्होंने गोंडी की एक कथा से गोंडी भाषा के प्रादुर्भाव का जिक्र किया है। उन्होंने यहां तक प्रस्थापित किया है कि गोंडी की गिनती का उद्‌भव 'गोएन्दाड़ी के बोल से ही कुपार ने किया उन्होंने ही गोंडी अंकों (1, 2, 3, 4) की रचना की' जैसे – उण्डुंग, रण्डुंग, मुण्डुंग और नाण्डुंग।

श्रवण कुमार मीणा : आदिवासी विरासत

श्रवण कुमार मीणा ने 'आदिवासी साहित्य, समकालीन लेखन, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं से अनुवाद आलेख' विषय पर अपना आलेख 'आदिवासी विरासत' पढ़ा और राजस्थानी शौयगाथाओं तथा इतिहास चर्चा के साथ–साथ आदिवासी, खासकर मीणाओं तथा भीलों के संदर्भ में तथ्य प्रस्तुत किए।

सुन्हेर सिंह ताराम : मोहताज

सुन्हेर सिंह ताराम ने गोंडी भाषा की कहानी 'मोहताज' का पाठ किया। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने एक आदिवासी मजदूर के शोषण का चित्रण किया है। यह शोषण एक दिकू करता है, जो साजिश और षड्‌यंत्र के तहत आदिवासियों को उनके अपने ही जल, जंगल और जमीन से दर–बदर करके उनका मालिक बन बैठता है। **के.एम. मैत्री और शंकरलाल मीणा जी** ने अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में इसे समकालीन आदिवासी कहानी कहा। उन्होंने कहा कि आदिवासी दुनिया की यही हकीकत है और उन्होंने आदिवासी लेखकों से आह्‌वान किया कि वे इस हकीकत को उजागर करने का काम करें।

जोराम यालम नाबाम : दिलासा

चर्चित युवा लेखिका **जोराम यालम नाबाम** ने न्यीशि भाषा की अपनी कहानी 'दिलासा' का पाठ किया। 'दिलासा' एक ऑटो ड्राइवर की कहानी है जिसकी ऑटो पर सात घायल मजदूर अस्पताल जाने के लिए बैठते हैं लेकिन ऑटो ड्राइवर के सनकीपन की वजह से वे अस्पताल जाते–जाते रह जाते हैं। सात घायल मजदूरों के समय पर अस्पताल न पहुंचने की मनोदशाओं का चित्रण करती है यह कहानी। हालांकि कुछ देर से ही सही, लेकिन वे अस्पताल पहुंचते हैं। उन घायल मजदूरों को यही 'दिलासा' है कि वे देर से ही सही लेकिन अस्पताल तो पहुंच गए। सत्र की अध्यक्षता करते हुए **के.एम. मैत्री और श्री शंकर लाल मीणा** ने 'दिलासा' जैसी कहानी का चित्रण करने के लिए जोराम नाबाम को बधाई दी और नाबाम से अपेक्षा की कि वे भविष्य में भी ऐसी कहानी लिखकर आदिवासी साहित्य को समृद्ध करेंगी। के.एम. मैत्री ने 'दिलासा' को आदिवासी जीवन का समकालीन यथार्थ बताया।

उषा किरण आत्राम : भूख

प्रसिद्ध गोंडी कहानीकार **उषा किरण आत्राम** ने 'भूख' कहानी का पाठ किया। 'भूख' यदि भूख ही रह जाए और अंत तक उसका निपटारा नहीं हो पाए तो इससे बड़ा अभिशाप और त्रासदी किसी भी समाज और देश के लिए और क्या हो सकती है? एक तरफ तो एक छोटे से वर्ग के लिए खाने की प्लेटें सजाई जाती हैं, वहीं दूसरी ओर अधिकांश लोगों को अपनी भूख मिटाने के लिए दो रोटी तक भी मय्यसर नहीं हो पाती। जी हां, आदिवासी गोंडी समाज की ऐसे ही रोंगटे खड़े कर देने वाली एक सच्ची घटना

का चित्रण किया है उषा किरण आत्राम ने। बाढ़ में फंसे हुए लोगों की कहानी है 'भूख'। **के.एम. मैत्री और श्री शंकरलाल मीणा** ने अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में इस कहानी को मर्म पर चोट करने वाली रचना बताया और कहा कि यह 21वीं शताब्दी के भारत की एक सच्ची तस्वीर पेश करती है। उन्होंने इसे एक राजनीतिक कहानी बताया।

वाल्टर भेंगरा 'तरूण' : लसा

श्री वाल्टर भेंगरा 'तरुण' ने मुंडारी भाषा की कहानी 'लसा' का पाठ किया। स्वयंसेवी संस्थाएं किस तरह से मजबूर आदिवासी लड़कियों का फायदा उठाती हैं और अपना उल्लू सीधा करने के लिए उनकी देह का इस्तेमाल करती हैं, इसका चित्रण लेखक ने इस में कहानी किया है। 'लसा' मुंडारी भाषा की सशक्त कहानी है, जो आदिवासी किशोरियों की उच्छृंखलता, शहरी दरिंदों और उनके एजेटों द्वारा उन्हें छले जाने तथा नगरों, महानगरों में घरेलू कामकाज के लिए आपूर्ति की जाने की झलक प्रस्तुत करती है। 'लसा' कहानी की तुलसी, मरियम, फूलमनी तीनों किशोरियां, साप्ताहिक हाट में दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं खरीदने जाती हैं। उनकी मस्ती, नादानी और उच्छृंखलता के चलते खाने–पीने की दुकान पर पैसे कम पड़ जाने के कारण वे 'सरला' की सहृदयता का शिकार होती हैं। 'सरला' विधवा है और स्वयं देवेन्द्र दरिंदे के चंगुल में फंसी हुई उसकी एजेण्ट है। देवेन्द्र एक चालाक भेड़िया है, जो आदिवासी भोली–भाली विवश स्त्रियों, किशोरियों को फंसा कर शहरों में घरेलू कामकाज हेतु उनकी आपूर्ति करता है। कहानीकार कहते हैं *"'लसा' बड़ के वृक्ष का गोंद है, जो एक ऐसा चिपचिपा पदार्थ है, जिसका उपयोग पक्षियों को फंसाने हेतु शिकारी करता है। देवेन्द्र भी एक ऐसा ही शिकारी है, जिसने किशोरियों को फंसाने हेतु सरला को नौकरी व कुछ धन देकर लगा दिया था। आदिवासी किशोरी तुलसी उसी 'लसा' में फंस जाती है।"* कहानी पर अध्यक्षीय टिप्पणी में अध्यक्ष **श्री मैत्री और शंकरलाल मीणा** ने कहा कि इस तरह की घटनाएं दिन–ब–दिन आदिवासी समाज में बढ़ती ही जा रही हैं। इसका मुकाबला आदिवासी समाज को डटकर करना होगा।

विमल कुमार टोप्पो : रक्तदान

श्री विमल कुमार टोप्पो ने कुडुख भाषा की समकालीन कहानी 'रक्तदान' का पाठ किया। इस कहानी के माध्यम से ये पता चलता है कि आज भी आदिवासी समाज मानवता, मनुष्यता, उदारता, संवेदनशीलता और कल्याण की भावना से ओत–प्रोत है जबकि गैर आदिवासी समाज से आज ये सभी गुण गायब होते जा रहे हैं। कहानी के नायक द्वारा बैंक में ओ ग्रुप का खून न रहने पर अपना खून देना यह सिद्ध करता है कि आदिवासी की सोच किस हद तक सकारात्मक है। यह कहानी सरकारी कार्यालयों में पसरे लालफीताशाही को भी दिखाती है। **अध्यक्षद्वय** ने रक्तदान कहानी को मर्म को छूने वाली बताया।

सुधीर कुमार बनौत : तेलंगाना लंबाड़ा कहानी

श्री सुधीर कुमार बनौत ने लम्बाड़ी लोककथा 'तेलगांना लम्बाड़ा कहानी' का पाठ किया। यह एक सुखांत लोककथा है, जिसके आरंभ में पति–पत्नी के बीच कलह और क्लेश का वातावरण पसरा रहता है। लेकिन अंत में सब कुछ ठीक–ठाक हो जाता है। **अध्यक्षद्वय** ने बताया कि आदिवासियों में बाहरी प्रभाव ने किस तरह असर डाला है कि उनकी लोककथाओं तक में स्त्री के प्रति दृष्टिकोण भी प्रभावित हो गया है। ये लोककथा इसका उदाहरण है।

विजय सिंह मीणा : दांव पेंच

श्री विजय सिंह मीणा की राजस्थानी कहानी 'दांव–पेंच' पढ़ी गई। यह एक समकालीन कहानी है और इसमें शादी–ब्याह को बिगाड़ने में किस तरह के दांव–पेंच धड़ल्ले से रचे जाते हैं, का वर्णन है। अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में **अध्यक्षद्वय** ने इसे समकालीन आदिवासी कहानी कहा और बताया कि इस तरह के दांव–पेंच गांवों में आजकल खूब रचे जा रहे हैं। यह एक सत्यपरक यथार्थवादी कहानी है।

डा. वी. रामकोटी 'पंवार' : पीपली दादी

डॉ. वी. रामकोटी 'पंवार' ने तेलुगु लोककथा 'पींपली दादी' के माध्यम से बंजारा समाज में बेटे की चाहत का चित्रण किया है। लोककथाओं में जैसा अंधविश्वासों का चित्रण होता है, वैसे ही अंधविश्वासों का चित्रण इस लोककथा में भी हुआ है। **अध्यक्षद्वय**

ने 'पीपली दादी' लोककथा को गैर–आदिवासी समाज की बुराई बताया है जो आदिवासी समाज में भी प्रविष्ट कर गई है।

संजय सोमनाथ दोबाड़े : मां

संजय सोमनाथ दोबाड़े की मराठी कहानी 'मां' एक ऐसी कहानी है जो आदिवासी समाज में लड़कियों की अहमियत, उसके महत्व को बताती है। दूसरे समाजों में जहां कन्याओं की भ्रूण हत्या कर दी जाती है, वहीं आदिवासी समाज में एक मां को एक लड़की की कमी इतनी खलती है कि वह बेटी पाने के लिए बेचैन और व्याकुल हो उठती है। कहानी पर अपनी टिप्पणी देते हुए **अध्यक्ष श्री मैत्री और मीणा जी** ने 'मां' को आधुनिक समाज के लिए एक सबक बताया।

बाबाराव मंडावी : भाकर

श्री बाबाराव मंडावी की 'भाकर' कहानी की पहली पंक्ति कहानी का मर्म कह देती है और कह देती है आदिवासी मजदूरों की व्यथा–कथा। लेखक कहता है–'रोटी के लिए झगड़ने वालों की संख्या चींटी जैसे असंख्य हैं जैसे चींटी भी भिभोरा बनाती है वैसे ही लोग अपने–आप में भंवर बनाकर गरगराते हैं।' यह एक ऐसे आदिवासी नायक की कहानी है जो हिम्मत और बहादुरी से काम लेता है और साहूकार का अंत तक सामना करता है, जबतक कि उसे उसके किए की सजा नहीं दिलवा देता। इस नायक की बहादुरी से उसकी पत्नी भी प्रेरित है। इसका उदाहरण है बेटी द्वारा गांव से भीख में मांगकर लाई गई 'भाकर' (रोटी) को खाने से इनकार कर देना। उसे यह सीख पति से मिलती है, जो इमानदारी और सत्यवादिता के चलते झूठ नहीं बोला, भले ही इसके लिए उसे झूठे मुकदमे में चौदह साल की जेल की सज़ा हो गई। **अध्यक्षद्वय** ने इसे एक अभूतपूर्व कहानी बताते हुए आदिवासी साहस, संस्कृति और मूल्यों की कहानी चिन्हित् किया।

सुशीला धुर्वे : गाय चोर दिकू

सुशीला धुर्वे ने गोंडी भाषा की कहानी 'गाय चोर दिकू' में दिकुओं (बाहरी लोगों) की वजह से आदिवासी समाज किस तरह से तबाह होता है का ताना–बाना बड़े ही खूबसूरत अंदाज में बुना है। अपनी टिप्पणी में **अध्यक्षों** ने इसे एक समकालीन राजनीतिक कहानी बताया। किस प्रकार जंगलों से लकड़ी चोरी, बाजारों से पशुओं की चोरी और गांव–घरों से स्त्रियों की चोरी एक संस्थागत तरीके से जारी है, इसे वर्णित करते हुए अध्यक्षों ने आदिवासी समाज के लिए इसे उनके अस्तित्व और संस्कृति पर खतरा बताया।

रामराजे आत्राम : नया लुगड़ा

'रामराजे आत्राम की गोंडी कहानी 'नया लूगड़ा' हमें यह बताती है कि इक्कीसवीं सदी में भी किस तरह से गांव के सामंतों को गरीब आदिवासियों का कुछ भी नया या अच्छा नहीं सुहाता है। इस कहानी में एक गरीब आदिवासी स्त्री को नई साड़ी पहनने पर कैसे गांव के एक सामंत के अपमान और दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है का चित्रण है। अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में **के.एम. मैत्री और शंकरलाल मीणा** ने कहा कि आज जब आदिवासी तरक्की कर रहा है और तथाकथित मुख्यधारा से मुह–दुह हो रहा है, तो सदियों से स्थापित वर्ग इसे सहन नहीं कर पा रहा। वे इसे अपने वर्चस्व में हस्ताक्षेप मानते हैं।

सेरिंग छोरोल : अखरोट का दरख्त

सेरिंग छोरोल की 'अखरोट का दरख्त' एक बच्ची के प्रकृति–प्रेम की अति मार्मिक और दिल को छूने वाली कहानी है, जो दर्शाती है कि बढ़ते शहरीकरण और आधुनिक विकास ने किस तरह गांवों के प्राकृतिक जीवन को तबाह करना शुरू किया है। एक छोटी–सी बच्ची के माध्यम से लेखिका ने मासूमियत और कोमलता को किस निर्ममता से रौंदा जाता है का चित्रण किया है। अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में **मैत्री जी और शंकरलाल मीणा** ने इस कहानी को प्रतीकात्मक बताया और गांवों में अंधाधुंध बढ़ते शहरीकरण और विकास को आदिवासी जीवन के लिए घातक बताया।

बिजोया साियान : आदिवासी विरासत के संरक्षण एवं संवाद हेतु अनुवाद जरूरी

सुश्री बिजोया साियान स्वयं नहीं आई लेकिन उनके आलेख 'आदिवासी विरासत के संरक्षण एवं संवाद हेतु अनुवाद जरूरी' का पाठ प्रस्तुत किया गया। लेखिका, आदिवासी विरासत की महानता और महत्ता पर प्रकाश डालते हुए, उसके संरक्षण पर ज़ोर

देती हैं। वे बताती हैं कि इसका अनुवाद आदिवासी और गैर–आदिवासी दोनों समाज के लिए जरूरी है। इस सन्दर्भ में वे रमणिका फाउंडेशन द्वारा पूर्वोत्तर समेत भारतीय आदिवासी साहित्य का हिंदी में रूपांतरण कराने की महत्ता को भी रेखांकित करती हैं। **श्री के. एम. मैत्री और शंकरलाल मीणा** ने बिजोया सावियान के इस लेख को काफी गम्भीर, सम्यक, मौजूं एवं महत्वपूर्ण बताया। उन्होंने बताया कि आदिवासी भाषाओं के साहित्य का अनुवाद न केवल उनकी संस्कृति जीवन–शैली, मूल्य, आस्था व विश्वास और भाषाओं से बाकी भारत को अवगत कराकर उससे जुड़ेगा बल्कि ये आदिवासी के प्रति गैर आदिवासियों के दृष्टिकोण में भी बदलाव लाएगा। स्वयं आदिवासी भी उनमें व्याप्त हो रही हीनभावना से उबरेंगे। इससे उनका आत्मसम्मान भी जागेगा।

संजय लोहकरे : ढोल

श्री संजय लोहकरे स्वयं नहीं आ पाए पर उनकी कहानी 'ढोल' का पाठ हुआ। ये कहानी पुरानी परंपराओं के खत्म होने पर बुजुर्गों में पहली निराशा को जहां दिखाती है, वहीं वे उनके दर्शन को भी व्याख्यायित करती है। ढोल बजाना उनकी परंपरा है खासकर होली में। इतने उत्साह से अमाश्या ढोलची ढोल बजाता है कि वह रातभर ढोल बजाते–बजाते गिर पड़ता है। उसकी सांसें बंद हो जाती हैं। पूरा गांव गमगीन है। उस गम में भी भगत कथा सुनाता है और कहता है 'जब पेड़ मरता है तो कोई पेड़ मातम नहीं बनाता... प्रकृति का चक्र निरंतर गतिमान है.... मनुष्य भी प्रकृति के गिर्द का गतिमान है... अमाश्या का ढोल भी पुनः बजने लगेगा।' वे निराश नहीं हैं।

सरिता सिंह बड़ाईक

सरिता सिंह बड़ाईक रेल में आरक्षण न होने की वजह से नहीं आ पाई पर उनकी कहानी 'दावेदार' पढ़ी गई। ये कहानी गांव के आदिवासी किसान समाज में व्याप्त विकृतियों को दर्शाती है। कैसे पिता के मरने पर उसके बेटे उसकी सम्पत्ति का हकदार बनने के लिए बढ़–चढ़कर रोते हैं और पिता की सेवा का दंभ भरते हैं जबकि पिता के जीते हुए सबने उसकी उपेक्षा की। इसी उपेक्षा के चलते वह (पिता) मर भी जाता है। अध्यक्ष ने अपनी टिप्पणी में कहा कि कहानी बहुत मौजूं और सामयिक है। लेकिन ये कहानी दर्शाती है कि आदिवासी परंपराएं और उनकी पुरखा संस्कृति का किस प्रकार विघटन हुआ है और दिकु–संस्कृति किस प्रकार घुसपैठ करती जा रही है। ये खतरे की निशानी है, जिससे बचानी जरूरी है।

मंगल सिंह मुण्डा : सपनों का देश भारत

मंगल सिंह मुण्डा स्वयं नहीं आ पाए पर उनकी कहानी 'सपनों का देश भारत' का पाठ हुआ। अपनी कथा में मंगल सिंह मुण्डा ने कम्युनिज्म और उसके प्रभाव का जिक्र किया है, खासकर रूस से आदान–प्रदान करने वक्त। जहां बोकारो स्टील सिटी में रूसी लोगों ने आकर स्टील का कारखाना लगाने में मदद की, वही रूस में भी राजकपूर के गीत और उनकी फिल्म 'आवारा' घर–घर चर्चित है। 'मेरा दिल तो आवारा न जाने' कहकर रूसी आह्लदित होता है वहीं रूसी पर्यटक भारत को सपनों का देश मानते हैं।

1:30 बजे से 2:00 तक भोजन, 2:00 बजे से 2:30 बजे तक : एक था शहरी–नुक्कड़ नाटक

द्वितीय दिवस, द्वितीय सत्र

समय – 10:00 सुबह से 12:00 बजे दोपहर तक दिनांक 31.10.2015

विषय : 'भारतीय लिखित इतिहास तथा भारतीय शास्त्रों एवं उसके मिथकों में आदिवासियों का विरूपीकरण और पुनार्पाठ एवं दुरूस्तीकरण की जरूरत पर विचार'

अध्यक्ष : हरि उरांव / वाहरू सोनवणे
संचालक : लखिमा देओरी

श्रवण कुमार मीणा : भारतीय इतिहास और शास्त्रों में आदिवासियों का विरूपीकरण

श्रवण कुमार मीणा ने कहा 'भारतीय लिखित इतिहास तथा भारतीय शास्त्रों एवं उसके मिथकों में आदिवासियों का विरूपीकरण और पुनर्पाठ एवं दुरूस्तीकरण की जरूरत पर विचार' विषय पर अपना आलेख 'भारतीय इतिहास और शास्त्रों में आदिवासियों का विरूपीकरण' पढ़ा। वालमीकि कृत रामायण में प्रस्तुत आदिवासियों के विरूपीकरण पर टिप्पणी दी।

वाइ.के. हलपेटी : कर्नाटक की मेदार जाति का इतिहास

वाइके हलपेटी ने अपना आलेख 'मेदार जाति का इतिहास' पढ़ा। इस आलेख में उन्होंने एक पौराणिक कथा के माध्यम से नारद के मुख से मेदार जाति के पौराणिक इतिहास की जानकारी दी है। **श्री हरि उरांव और वाहर–सोनवणे** जी ने कहा कि मेदार जाति के प्राचीन इतिहास को जानने के लिए यह लेख महत्वपूर्ण है लेकिन इसके माध्यम से हमें मेदार जाति के मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास का पता नहीं चलता।

हिम्मत सिंह आरमो : गोंडवाना महिमा मंथन

हिम्मत सिंह आरमो ने 'गोंडवाना महिमा मंथन' आलेख का पाठ किया। इस आलेख के माध्यम से आलेख वाचक ने गोंडी भाषा, उसके रीति–रिवाज, परंपरा, साहित्य, संस्कृति का बखान किया। **अध्यक्षद्वय** ने अपनी टिप्पणी में गोंडी समाज को जानने–समझने के लिए इस आलेख को महत्वपूर्ण बताया।

सुन्हेर सिंह ताराम : गोंडी भाषा (कोहता लव काना)

सुन्हेर सिंह ताराम ने गोंडी भाषा की उत्पत्ति का जिक्र करते हुए उसकी व्यापकता का जिक्र किया। समकालीन संदर्भ देते हुए उन्होंने विभिन्न रचनाओं को सोदाहरण प्रस्तुत किया।

राधेश्याम मालचा : बंजारा : पहचान की तलाश

श्री राधेश्याम मालचा ने अपने आलेख में एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर इशारा किया है कि देश की राजधानी दिल्ली में रायसीना हिल्स पर जो राष्ट्रपति भवन स्थित है, वह बंजारों की जमीन पर अवस्थित है। लेकिन आज के दौर में बंजारा समाज के लोग दर–बदर हैं। बंजारों की एक मुक्कमल पहचान नहीं बन पा रही है और वे बिखरे हुए हैं। कहीं वे पिछड़ा हैं, तो कहीं एस.टी. और कहीं दलित। **अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में हरि उरांव और वाहरू जी** ने राष्ट्रपति भवन से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों के उद्घाटन के लिए राधेश्याम मालचा की सराहना की।

श्यामराव राठौर : बंजारा समाज : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, भाषा एवं शौर्य गाथा

श्यामराव राठौर स्वयं नहीं आ पाए। उनके आलेख का पाठ किया गया, जिसका विषय था 'बंजारा समाज : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : भाषा एवं शौर्य–गाथा'। श्री राठौर के इस आलेख के जारिए बंजारा समाज के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। बंजारा समाज की भाषा की उत्पत्ति पर भी इस आलेख में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। बंजारा समाज के नायकों की शौर्यगाथाएं न सिर्फ बंजारा समाज के लिए बल्कि अन्य के लिए भी प्रेरणास्पद हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि श्याम राव राठौड़ का यह आलेख बंजारा समाज को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जानने–समझने के लिए अनिवार्य बन पड़ा है। अपनी **अध्यक्षीय टिप्पणी में हरि उरांव और वाहरू जी ने** इस आलेख को बंजारा समाज का महत्वपूर्ण लेखा–जोखा कहा।

लटारी कवडू मडावी : 9 अगस्त मूलनिवासी दिवस और आदिवासी

लटारी कवडू मडावी ने सवाल उठाया कि जब हम भारत में 9 अगस्त 'मूलनिवासी दिवस' के रूप में मनाते हैं, तो हमारे लिए यह समझना जरुरी है कि मूलनिवासी का अर्थ क्या है? उस दिन के उपलक्ष्य में जागतिक/वैश्विक स्तर पर मूलनिवासी की संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा दी गई परिभाषा, दुनिया के मूलनिवासियों के नैतिक अधिकारों की सनद है।

भारतीय राज्य के संविधान निर्माण करने के लिए, पंडित जवाहर लाल नेहरु द्वारा प्रस्तुत किए गए मसविदे (Objectives Resolution) पर जयपाल सिंह मुंडा ने दिनांक 19 दिसंबर 1946 में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा था–"आदिवासियों का 6000 वर्षों से शोषण किया गया है। उसके एवज में आदिवासियों को पूर्वलक्षित प्रभाव से प्रतिपूर्ति करने के लिए संविधान में प्रावधान किया जाना चाहिए।" ऐसा प्रस्ताव प्रस्तुत करके कि 'आदिवासी ही इस देश के 'मूलनिवासी' हैं, इन्हें संविधान में 'मूलनिवासी' से ही संबोधित किया जाना चाहिए का मत जयपाल सिंह मुंडा ने व्यक्त किया था। पर संविधान समिति ने आदिवासियों की किसी भी प्रकार की व्याख्या न कर,

आदिवासियों को अनुसूचित जनजाति कहकर संबोधित किया। दरअसल यह आदिवासियों के अस्तित्व का ही नकार था।

आदिवासी को मूलनिवासी का दर्जा देने के लिए भारतीय प्रशासन पूरी तरह सकरात्मक नज़र नहीं आता है। इसका कारण उसकी यह समझ है कि यदि आदिवासियों को मूलनिवासी का दर्जा दिया गया तो बाकी के लोग बाहरी करार कर दिए जाएंगे और यही वे नहीं चाहते। अब प्रश्न यह उठता है कि विश्व के इतर देशों में आदिवासियों को मूलनिवासी का दर्जा दे दिया गया है, तो क्या उन देशों के इतर लोग बाहरी बन गए? भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में यह कह कर कि 'भारत में मूलनिवासी नहीं है' एक नकारात्मक भूमिका अदा की है। यह आदिवासियों के साथ अन्याय है।

जिस प्रकार से अमेरिका में ट्राईबल रिर्जवेशन अधिनियम–1830 पास कर रेड इंडियन आदिवासियों पर 1830 में 'जनजाति' का लेबल थोपा गया, उसी प्रकार भारत में बर्तानिया के अंग्रेज़ों ने आदिवासियों पर 'गुनहगार जनजाति कानून' थोपकर 1871 में भारतीय आदिवासियों पर भी 'जनजाति' का लेबल लगा दिया। इस प्रकार से अमेरिका और भारत देश के आदिवासियों पर ट्राईब (Tribes) नाम की 'गुलाम संहिता' (Slavery Code) थोपने की कलम एक ही है, यह बात समझ में आती है।

भारत के आदिवासी जाति व्यवस्था में नहीं आते। ''दलित–आदिवासी दोनों ही व्यवस्था द्वारा शोषित होते हैं–'' यह आवाज़ यू.एन.ओ. में संयुक्त रूप से उठाई गई। दोनों जनसमूहों का एक जैसा ही शोषण होने के कारण दोनों का एक वंश नहीं हो सकता। दलित जाति–व्यवस्था में आते हैं, तो आदिवासी वांशिक गणों पर आधारित हैं, ऐसा प्रश्न यू.एन.ओ. के वैश्विक परिषद के सामने भी आया था। मलेशिया विश्व परिषद् के बाद भारत देश ने भी ठोस रूप से जाति मतलब वंश नहीं, ऐसी भूमिका लेते हुए जातिगत भेदभाव, वंशगत भेदभाव नहीं होता पर चर्चा की थी। वंशवाद भयावह घातक हथियार है। भारत देश के आदिवासी इस वंशवाद से पीड़ित हैं। (विवेक साप्ताहिक 28 अक्तूबर 2014)

द्वितीय दिवस, तृतीय सत्र

समय–2:30 दोपहर से 4:00 बजे शाम तक

दिनांक 31.10.2015

विषय : आदिवासियों में स्त्रियों की भूमिका

अध्यक्ष : उषा किरण आत्राम एवं श्रवण कुमार मीणा

संचालक : अशोक कुमार बाखला

लखिमा देओरी : आदिवासी देओरी समाज और महिलाओं की स्थिति

लखिमा देओरी ने 'आदिवासी देओरी समाज और महिलाओं की स्थिति' आलेख का पाठ किया। इस आलेख के माध्यम से लखिमा देओरी ने रेखांकित किया है कि देओरी समाज यद्यपि एक पितृसत्तात्मक समाज है लेकिन पिता की सम्पत्तियों में यहां बेटियों को भी बराबर का हिस्सा मिलता है। इस समाज की एक और विशिष्टता हैं, यहां दहेज प्रथा का चलन नहीं होना। यहां की महिलाएं काफी हद तक स्वतंत्र हैं। **अध्यक्ष उषा आत्राम और श्री श्रवण कुमार मीणा** ने देओरी के आलेख को देओरी समाज का सम्यक मूल्यांकन बताया।

आचार्य भट्टू रमेश : समकालीन बंजारा महिलाओं की दयनीय स्थिति

आचार्य भट्टू रमेश ने 'समकालीन बंजारा महिलाओं की दयनीय स्थिति' आलेख का पाठ किया। इस आलेख के जरिए भट्टू रमेश ने तीन बंजारा महिलाओं के उदाहरण द्वारा बंजारा महिलाओं की दयनीय दशा पर प्रकाश डाला। लेखक का निष्कर्ष है कि बीसवीं सदी से ही दुनियाभर की महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है लेकिन बंजारा स्त्रियों में वांछित सुधार नहीं हो पाया। इस सत्र के **अध्यक्षद्वय उषा किरण आत्राम और श्री मीणा** ने इस आलेख को बंजारा महिलाओं के यथार्थ के करीब बताया।

हेसेल सारू : दूसरी औरत

हेसेल सारू की 'दूसरी औरत' कहानी एक ऐसे आदिवासी नौजवान की कहानी है, जो एक पत्नी

के रहते हुए दूसरी औरत से शादी कर लेता है। लेकिन दूसरी औरत से उसे तनिक भी प्यार नहीं मिलता। पहली औरत को वह 'बांझ' समझकर छोड़ने की भूल करता है, जो उसे भरपूर प्यार देती थी। लेकिन दूसरी औरत से भी उसे संतान की प्राप्ति नहीं होती। वस्तुतः यह एक बांझ 'मर्द' की कहानी है, जो इस मुगालते में जीता है कि बांझ पुरुष नहीं बल्कि औरत होती है। पितृसत्तात्मक समाज पर चोट करती है यह कहानी। झारखंड के आदिवासी समाज से इस तरह की घटनाओं की खबरें रोजाना आती हैं। अपनी **अध्यक्षीय टिप्पणी में सुश्री उषा किरण आत्राम और श्री श्रवण कुमार मीणा** ने कहा कि यह कहानी आदिवासी समाज की सोच, उसके दुर्गुणों और अंधविश्वासों को सामने लाने का काम करती है। हेसेल सारू की ईमानदारी की सराहना करते हुए उन्होंने कहा कि कहानीकार ने अपने समाज के दुर्गुणों को सामने लाने का काम करके साहस का परिचय दिया है। उन्होंने इसे एक समकालीन यथार्थवादी कहानी बताया।

रतन सिंह बैगा : एक तोता और बूढ़ा बैगा

रतन सिंह बैगा ने बैगानी भाषा की लोककथा 'एक तोता और बूढ़ा बैगा' लोककथा का पाठ किया। इसमें बूढ़ा बैगा आदिवासी किसान का संबंध बन्दर और तोतों के राजा बुद्धसेन के माध्यम से प्रकृति व पशु–पक्षियों से स्थापित किया गया है। जिस बैगा का खेत बन्दरों के सहयोग से उपजाऊ बनता है, उसी के धान को तोते चुग जाते हैं। क्रोधित बैगा बुद्धसेन तोते को कैद कर लेता है, जो स्वयं में बाजार में एक लाख रुपये में खुद को बिकवाकर बूढ़े बैगा किसान को लखपति बनवा देता है। इतना ही नहीं बुद्धसेन तोते को मरवा देने की साजिश रचने वाले 'राजा को पहले कंगाल और फिर पुनः अमीर बना देता है। कहानीकार शायद यह संदेश देना चाहता है कि प्रकृति, जंगली जानवर, बन्दर, पक्षी आदि हमारे हितैषी हैं। इन्हें मारो मत। ये निर्दोष प्राणी सदा हमारे सहायक हैं। इस कहानी के माध्यम से आदिवासी समाज में प्रकृति प्रेम और वहां पशु–पक्षियों के महत्व का पता चलता है। पशु–पक्षियों के महत्व को दर्शाने के लिए ही इस कहानी में एक तोते के जीवन में आने पर बूढ़ा बैगा और राजा धन–धान्य से परिपूर्ण हो जाते हैं। **उषा किरण आत्राम और श्री श्रवण कुमार मीणा** ने अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में इसे एक प्रतिकात्मक लोककथा बताया और कहा कि "यह मध्यप्रदेश के उस बैगा आदिवासी की लोककथा है, जिसमें मात्र एक ही व्यक्ति रतन सिंह बैगा आठवीं जमात तक पढ़ पाए हैं। वे आज यहां कहानी–पाठ कर रहे हैं। इतने पिछड़े समाज की सांस्कृतिक विरासत अभी हमें लोककथाओं से ही प्राप्त हो सकती है, जो आज आपके बीच इस लोककथा के माध्यम से प्रस्तुत हुई है।"

बादल हेम्ब्रम : बिन बूझे

कहानीकार **बादल हेम्ब्रम** ने संताली भाषा की 'बिन बूझे' कहानी का पाठ किया। 'बिन बूझे' कहानी आदिवासी समाज के अंदर की बुराइयों को सामने लाने का काम करती है। दलित या आदिवासी लेखक एक प्रवृत्ति के तहत अपने–अपने समाज की बुराइयों को सामने लाने का जोख़िम नहीं उठा पाते हैं। इसलिए इस तरह की कहानी का चित्रण कहानीकार के साहस का परिचायक है। आदिवासी–समाज में भी महिलाओं की मानसिकता कमोबेश वैसी ही है, जैसी अन्य में। इस कहानी में एक शादीशुदा आदिवासी महिला के शक्की स्वभाव का चित्रण किया गया है, जिसे आशंका है कि उसका पति किसी और औरत से प्यार करता है, जबकि वह औरत जिस पर वह शक करती है, बरसों पहले मर चुकी होती है। हकीकत में उसका पति अनाथ बच्चों को शिक्षित करने का काम कर रहा होता है। उसकी आशंका निर्मूल साबित होती है। अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में **ऊषा आत्राम और श्रवण कुमार मीणा** ने इस कहानी को सामाजिक सच्चाई को बयां करने वाली कहानी बताया।

अर्जुन सिंह कालू भाई पारगी : माता–पिता की आज्ञा

अर्जुन सिंह कालू भाई पारगी ने पारधी भाषा की लोककथा 'माता–पिता की आज्ञा' का पाठ किया। लोक कथाओं के माध्यम से जैसे हमें एक शिक्षा मिलती है, एक संदेश मिलता है, उसी तरह से

इस लोककथा के माध्यम से भी हमें यह संदेश या शिक्षा मिलती है कि जो कोई भी माता–पिता की आज्ञा मानते हैं, उसके जीवन में कोई दुख नहीं होता। **उषा किरण आत्राम और श्री मीणा** ने अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में इसे आदिवासी समाज की परम्परा का चित्रण बताया।

वसुधा मंडावी : इरूक

वसुधा मंडावी ने गोंडी भाषा की कहानी 'इरूक' का पाठ किया। 'इरूक' स्त्री सशक्तिकरण की एक बेहतरीन कहानी है। इरूक के माध्यम से कहानीकार वसुधा मंडावी ने आदिवासी स्त्री के हीरोइज़म को दिखाया है कि वह किस तरह से अपने समाज के अपमान का बदला लेती है। यह कहानी अपने गठन, शिल्प और भाषा के लिहाज से भी महत्वपूर्ण बन पड़ी है। **उषा किरण आत्राम और श्रवण कुमार मीणा** ने अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में इस कहानी को एक बेमिसाल आदिवासी कहानी बताया, जो न सिर्फ अपने कंटेंट के लिहाज से खूबसूरत है बल्कि शिल्प के लिहाज से भी चकित करती है।

जनप्पा : हसालारू की कहानी

श्री जनप्पा ने आलेख 'हसालारू की कहानी' पढ़ा और उन्होंने बताया कि कर्नाटक के कतिपय जिलों जैसे– चिकमंगलूर, शिमोगा, हसान, दावानागारे, बेलगाम, गडग व बैंगलोर में रहने वाला हसालारू आदिवासी जनसमूह कर्नाटक में 50 आदिवासी समूहों में से एक है। इसकी कुल आबादी 24,466 है। चिकमंगलूर में इनकी जनसंख्या सबसे अधिक है। यह एक ऐसा आदिवासी समूह है, जो अपने पिछड़ेपन, अशिक्षा, अन्धविश्वास व सरकारी योजनाओं में उनके प्रदत्त अधिकारों व योजनाओं से अपने अज्ञान के कारण वंचित है। अन्य आदिवासी समूहों की तरह हसालारू समूह से भी भेदभाव बरता जाता है और सवर्ण इन्हें निम्न और हेय मानते हैं। कुपोषण, जंगल में प्रवेश से मनाही, जमीन व शिक्षा से वर्जित व वंचित सामाजिक असमानता और मृत्यु की दर अधिक होने के कारण हसालारू समूह अभी भी समय से बहुत पीछे है और शोषण, भ्रष्टाचार व दलालों के शोषण से दूसरे समूहों की अपेक्षा अधिक पीड़ित है। इनकी भाषा तुलु है। ये अधिकतर कॉफी बगानों में कार्यरत हैं या डेली कुली का काम करते हैं। फलतः वे आर्थिक रूप से भी अत्यंत दयनीय स्थिति में हैं। अशिक्षा के चलते उनमें लीडरशिप की भी कमी है।

बसालिंगप्पा : चेन्चू कहानी

श्री बसालिंगप्पा ने अपने आलेख 'चेन्चुओं की कहानी' में बताया कि कर्नाटक के 50 आदिवासी समूहों में चेन्चू चेजुवार, आदिवासी समूह क्रमांक 5 पर दर्ज है, जो आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं से आज भी जूझ रहा है। यह समूह मूलतः तेलंगाना के महबूबनगर जिला का मूल निवासी है। कर्नाटक में ये गुलबर्गा के एक भाग में पाए जाते हैं। इनकी भाषा तेलुगु है। पहले ये आन्ध्रप्रदेश में पेड़ों में सुराख करके या गुफाओं में रहते थे। ये देवी भरमारराभा के प्रार्थना गीत गाते हैं और कीर्तन भी करते हैं। यह समूह मांसाहारी है और पशु–पक्षियों के मांस पर निर्भर रहता है। पुराणों में इनका मूल स्थान इजिप्ट दर्शाया गया है। ये लोग गडरिए थे। ओबालेश्वर गडरिए और यारागोल्ला ट्राइब की एक सुन्दरी की सन्तान 'चेन्चू' कहलाती है। इनकी आबादी कुल 612 है, जिसमें 144 लोग साक्षर हैं। इन 144 में एक बी.ए. है और एक एम. ए.बी.एड। एक ने तीन वर्ष का डिप्लोमा कोर्स पास किया है। 5 चेन्चू विद्यार्थी हाईस्कूल में पढ़ते हैं।

मंगल गरासिया : देविया जंगिया

मंगल गरासिया ने एक राजस्थानी लोककथा 'देविया जंगिया' का पाठ किया। देविया और जंगिया दो आदिवासी युवाओं की कहानी है और ये दोनों भाई जांबाज़ शिकारी के रूप में जंगल में मशहूर हैं। वे दोनों भाई किसी भी खतरनाक जानवर का शिकार कर सकते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि यह एक ऐसी काहनी है, जो दो आदिवासी भाइयों की वीरता और साहस का बखान करती है। यह आदिवासी विरासत की एक महत्वपूर्ण लोककथा है।

दमयंती सिंकू : सीनी के अजूबे प्रेमी

दमयंती सिंकू ने अपनी हो भाषा की कहानी 'सीनी–के अजूबे प्रेमी' का पाठ किया। यह एक अपाहिज आदिवासी युवती की कहानी है, जिससे दो

युवक प्रेम करते हैं। कहानी की नायिका उन दोनों युवकों के समक्ष उसके अपाहिजपन को दूर करने की शर्त पर शादी का प्रस्ताव रखती है पर वे दोनों युवक उससे शादी से मुकर जाते हैं। इसके बाद दोनों लड़की को तंग करना भी बंद कर देते हैं। इस तरह से एक प्रेम कहानी का दुखद अंत होता है। **अध्यक्ष उषा किरण आत्राम और श्री श्रवण कुमार मीणा** ने इस एक समकालीन प्रेम कहानी बताया, जिसका दुखद अंत होता है।

वनललरूअति वेस्पा : मिजोरम में स्त्री सशक्तिकरण

वनललरुअति वेस्पा के लेख 'मिजोरम में स्त्री सशक्तिकरण' आलेख का पाठ करवाया गया। वे स्वयं नहीं आ पाईं। इस आलेख के माध्यम से वनललरुअति वेस्पा ने सुदूर पूर्वोत्तर के मिजोराम राज्य में स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में उठाए गए कदमों का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है। इस दिशा में विभिन्न सरकारी संस्थान एवं गैर सरकारी संगठनों की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखिका बताती हैं कि मिजोरम में अब स्त्री सशक्तिकरण का रवैया समतावादी हो गया है। पहले इसमें दयाभाव का पुट था। इस आलेख पर अपनी **अध्यक्षीय टिप्पणी में उषा किरण आत्राम और श्री श्रवण कुमार मीणा** ने कहा, मिजोरम के स्त्री सशक्तिकरण को जानने के लिए यह एक जरूरी दस्तावेज़ है।

शांति खलको : मेरे बाप की शादी

शांति खलको ने कुड़ुख भाषा की कहानी 'मेरे बाप की शादी' का पाठ किया। शादी कहानी की नायिका की ही हो रही है लेकिन वह अपने बाप की दूसरी शादी को लेकर डर रही है। उसे अपने बाप की हकीकत का पता है कि कैसे उसने उसकी मां की जान गर्भपात करा कराकर ले ली थी। यह एक समकालीन आदिवासी कहानी है। जहां औरतों को उपभोग की वस्तु मानने की परिपाटी चल पड़ी है। यह आधुनिक समाज की बुराई है जो आदिवासी समाज में भी प्रविष्ट कर गई है।

बिजोया सावियान : लंगड़ापन

पूर्वोत्तर की प्रसिद्ध लेखिका **बिजोया सावियान** ने खासी भाषा की कहानी 'लंगड़ापन' का पाठ करवाया गया। यह एक ऐसी बहादुर औरत की कहानी है जो दंगा से पीड़ित लोगों की जान बचाती है। वहीं दूसरी ओर उस बहादुर औरत की जब मृत्यु होती है और इसका पता नायक को चलता है और नायक जब नायिका की अंतिम क्रिया संपन्न करके वापस लौटने लगता है तब अचानक उसका लंगड़ापन दूर हो जाता है। अध्यक्षद्वय ने कहा कि कहानी कला की दृष्टि से नायक में यह चमत्कार काबिल–ए–तारीफ है। श्रेष्ठ आदिवासी साहित्य में ऐसे कला अवयव का प्रयोग बहुलांश में मिलता है। इसे हम एक प्रतीकात्मक और समकालीन आदिवासी कहानी कह सकते हैं।

द्वितीय दिवस, चौथा सत्र

समय–4:30 दोपहर से 6:00 बजे शाम तक
दिनांक 31.10.2015

विषय : प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा आदिवासी मुद्दे

अध्यक्ष : मुक्ति तिर्की (संपादक, दलित आदिवासी दुनिया)/गंगाराम गागराई
संचालक : कुलदीप मीणा

हरिराम मीणा : मीडिया और आदिवासी

हरिराम मीणा ने इस सत्र का पहला आलेख प्रस्तुत किया। आलेख का विषय था 'मीडिया और आदिवासी'। इस आलेख के माध्यम से हरिराम मीणा ने प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में आदिवासियों के प्रति कृपण रवैये का उल्लेख किया है। साथ ही उन्होंने इस बात की भी छानबीन की है कि आदिवासियों का अपना मीडिया कहां तक विकसित हो पाया है। हरिराम मीणा के इस लेख की यह विशेषता ही है कि इसमें सोशल मीडिया और डिजिटल मीडिया की भी छानबीन की गई है। इस सत्र के अध्यक्ष ने इस आलेख को प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का पोस्टमार्टम कहा।

निरंजन कुजूर : झारखंड सिनेमा का भविष्य

निरंजन कुजूर के आलेख को स्वयं अध्यक्ष ने पढ़ा। चूंकि लेखक स्वयं नहीं आ पाए। विषय था झारखंड के सिनेमा का भविष्य। इसके लेखक हैं आदिवासी फिल्मकार निरंजन कुजूर। निरंजन कुजूर इस आलेख के जरिए बताते हैं कि झारखंडी सिनेमा का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है, बशर्ते झारखंड सरकार इसमें दिलचस्पी ले। निरंजन कुजूर का इस संदर्भ में तर्क है कि बांग्ला, मलयालम, तमिल और तेलुगु फिल्मों का तब तक विकास सम्भव नहीं हुआ, जब तक कि वहां की सरकारों ने उनमें दिलचस्पी नहीं ली। **अध्यक्षद्वय** ने इस आलेख को झारखंडी सिनेमा को जानने–समझने के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण बताया।

सिद्धेश्वर सरदार : हम खो गए

श्री सिद्धेश्वर सरदार ने अपनी भूमिज भाषा की कहानी 'हम खो गए' का पाठ किया। इस कहानी की नायिका एक आदिवासी लड़की है, जिसके पूर्वजों को विस्थापन का दंश झेलना पड़ता है। यह लड़की जब अपने पूर्वजों की भूमि पर लौटती है, तो उसे वहां की संस्कृति–परंपरा, रहन–सहन से वहां के लोग अवगत कराते हैं। अपने पूर्वजों के विस्थापन का कारण ढूढ़ने आई यह लड़की। यह सब जान–समझकर भावुक और द्रवित हो जाती है। 'हम खो गए' पर **अध्यक्षद्वय** ने इसे एक राजनीतिक कहानी करार दिया और कहा कि विस्थापन आदिवासी दुनिया के लिए अभिशाप के समान है और इसी का चित्रण इस कहानी में किया गया है।

सूबेदार प्रदीप मंडावी : नन्हा सा कंदिल

सूबेदार प्रदीप मंडावी ने गोंडी भाषा की 'नन्हा–सा कंदील' जैसी खूबसूरत कहानी का पाठ किया। यह एक गरीब प्रतिभाशाली आदिवासी लड़की की कहानी है। वह मेडिकल की एक तेजस्वी स्टूडेंट तो है ही, साथ ही वह एक कुशल नृत्यांगना भी है। इस गरीब आदिवासी लड़की की यही तेजस्विता सवर्ण अध्यापकों और छात्रों को नहीं सुहाती। मेडिकल कॉलेज में उसे पग–पग पर नीचा दिखाने, प्रताड़ित करने और शारीरिक–मानसिक रूप से प्रताड़ित करने की कोशिश होती रहती है। लेकिन एक ईसाई अध्यापक और अध्यापिका की मदद से वह अपनी मंजिल तय करने में कामयाब हो जाती है। वह अपने गांव जाकर गरीब आदिवासियों की सेवा में जुट जाती है। **अध्यक्षद्वय** ने अपनी टिप्पणी देते हुए ने कहा कि दलित–आदिवासी छात्रों के साथ इस तरह का भेदभाव और अन्याय कालेजों और विश्वविद्यालयों में रोजाना घटित हो रहा है। अध्यक्ष महोदय ने इस तरह के रोंगटे खड़े कर देने वाली घटनाओं को कहानी के रूप में ढालने के लिए सूबेदार प्रदीप मंडावी को धन्यवाद दिया।

मणीरावण दुग्गा : बेसहारा

मणिरावण दुग्गा ने गोंडी भाषा की कहानी 'बेसहारा' का पाठ किया। यह एक आदिवासी लड़की की ट्रेजिक कहानी है, जिसे जन्म से लेकर मृत्यु तक अपने ही छलते रहते हैं। आदिवासी समाज में ऐसी लड़कियों की कमी नहीं है, जिनका जीवन त्रासदियों का पुतला बनकर रह गया है। कहानी पर अपनी टिप्पणी देते हुए **अध्यक्षद्वय** ने कहानी की नायिका सुधा को प्रतिनिधि चेहरा बताया, जिसके माध्यम से आदिवासी महिलाओं का दुख–दर्द कहानी में व्यक्त होता है।

शंकरलाल मीणा : कुज्जीव

शंकर लाल मीणा ने राजस्थानी कहानी 'कुज्जीव' का पाठ किया। 'कुज्जीव' जैसा चरित्र भारत के किसी भी गांव में मिल सकता है। कहानी के हिसाब से ऐसे पात्र बड़े ही दिलचस्प होते हैं। गांव वाले ऐसे पात्रों के बारे में सोचते हैं, यह कुज्जीव ऐसा क्यों है। लेकिन हो सकता है कुज्जीव (बंड्या) भी सोचता हो कि ये गांव वाले ऐसे क्यों हैं? अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में अध्यक्षद्वय ने ऐसे पात्र को कहानी में ढालने के लिए शंकर लाल मीणा को बधाई दी।

जितेन्द्र कुमार मुखी

जितेन्द्र कुमार मुखी ने 'हिन्दुस्तान की मीडिया में आदिवासी' आलेख का पाठ किया। यह आलेख हिंदी और अंग्रेजी मीडिया में आदिवासियों के प्रति बरते जा रहे भेदभाव को दर्शाता है। जितेन्द्र कुमार

मुखी इस आलेख के जरिए बताते हैं कि देश के किसी सेलिब्रिटी को यदि छींक भी आ जाए तो वह खबर बन जाती है लेकिन आदिवासियों के समूहों की मौत भी हो जाए तो वह मीडिया के लिए खबर नहीं बन पाती।

सदैद्या आधुनिक वाडियार : आजापा वेदा

सिद्दैया आधुनिक वाडियार ने 'गोंडों की उत्पति आलेख का पाठ किया। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि इसमें गोंडों और गोंडवाना की महिमा का बखान किया गया है। गोंडवाना की महिमा का एक उदाहरण देखिए– इसमें पूरी पृथ्वी को सात भागों में बांटा गया है, जिसमें पांच भाग सिर्फ गोंड और गोंडवाना के दिखाए गए हैं। आलेख आदिवासी इतिहास, विरासत अस्मिता की खोज करता है।

तृतीय दिवस, पांचवा सत्र

समय – 10:00 सुबह से 4:00 बजे शाम तक
दिनांक 01.11.2015

विषय : आदिवासी राजनीतिक नेतृत्व एवं आदिवासी सशक्तिकरण पर बहस

अध्यक्ष : हरिराम मीणा/गंगासहाय मीणा
संचालक : विपिन चौधरी

प्रभाकर तिर्की : आदिवासी राजनीतिक नेतृत्व: झारखंड राज्य के संदर्भ में

प्रभाकर तिर्की ने इस सत्र में पहला आलेख प्रस्तुत किया। आलेख का विषय था 'आदिवासी राजनीतिक नेतृत्व : झारखंड राज्य के संदर्भ में।' प्रभाकर तिर्की का यह आलेख महत्वपूर्ण बन पड़ा है, जिसमें इसमें वे बताते हैं कि झारखंड राज्य के नवनिर्माण का मार्ग तभी प्रशस्त हो सकेगा जब राज्य को संवेदनशील, वैचारिक एवं समर्पित नेतृत्व मिले। आदिवासियों की आशाओं एवं आकांक्षाओं पर खरा उतरने के लिए राज्य को ऐसे ही नेतृत्व की दरकार है। **अध्यक्षद्वय** ने अपनी टिप्पणी में इस आलेख को झारखंड के राजनीतिक परिदृश्य का सम्यक मूल्यांकन बताया।

वासवी किड़ो : तीन म यानी महुआ, माओ और माईग्रेशन

वासवी किड़ो ने 'तीन म यानी महुआ, माओ और माइग्रेशन' जैसे विषय पर अपना आलेख प्रस्तुत किया। वासवी किड़ो ने अपने इस आलेख के माध्यम से आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय की खबर ली है। वासवी बताती हैं कि आदिवासियों के अधिकारों के संरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधानों का पालन नहीं किया जा रहा है। वासवी किडो हरेक क्षेत्र में आदिवासियों की दयनीयता का हवाला देती हैं। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि आदिवासी हरेक क्षेत्र में आज भी ठगे ही जा रहे हैं। सत्र के **अध्यक्षद्वय** ने अपनी टिप्पणी में वासवी किड़ो के इस आलेख को झारखंड के आदिवासियों की दशा–दिशा का यथार्थवादी चित्रण करने वाला बताया।

सिद्धना आई काले : गोल गुम्बज का चोर

सिद्धना आई काले ने हारना शिकारी भाषा की लोककथा 'गोल–गुम्बज का चोर' का पाठ किया। यह इस आयोजन में भागीदार भाषाओं की 19वीं भाषा की कहानी है। 'गोलगुम्बज का चोर' में कहानीकार सिद्धना आई काले ने अर्थाभाव के त्रासदीमय जीवन में तुकाराम को पेश किया है। जिस समाज में आज भी जूठन संग्रह करने और खाने को लेकर झगड़ा होता हो, ऐसे समाज में गरीब तुकाराम अपना जीवनयापन कैसे करे? उसे बस एक ही रास्ता सूझता है 'चोरी'। तुकाराम विपन्नता से मुक्ति हेतु गोल गुम्बज बीजापुर से सिक्कों की चोरी की योजना बनाता है, उसे क्रियान्वित करता है और सफल भी होता है। लेकिन अंततः पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता है। पुलिस प्रताड़ना से आहत तुकाराम साक्ष्य के अभाव में जेल से छूट तो जाता है लेकिन प्रतिज्ञा करता है कि वह अपने बेटे को पढ़ाएगा–लिखाएगा क्योंकि शिक्षा से ही उनका जीवन संवर सकता है, समाज उन्नत हो सकता है। यही कहानी का संदेश भी है। इस लोककथा के माध्यम से एक चोर यह संदेश देता प्रतीत होता है कि भले वह (कथा नायक) एक चोर के रूप में कुख्यात रहा हो लेकिन वह भी यह सुनिश्चित करना चाहेगा कि उसकी संतानें इस चोरी नाम के कृत्य में शामिल नहीं हों। इस कहानी पर **अध्यक्षद्वय** ने टिप्पणी देते हुए इसे एक शिक्षाप्रद कहानी बताया और इसे एक चोर की कन्फेशन (आत्म स्वीकृति) भी कहा।

के.एम. मैत्री : गोंडराज बोमगोंड

के.एम. मैत्री ने कन्नड़–गोंडी भाषा की लोककथा 'गोंडराज बोमगोंड' का पाठ किया। यह एक ऐसी लोककथा है, जिसमें आदिवासी नायक जल, जंगल और जमीन पर राजा से अधिकार प्राप्त करता है। राजा से वह यह करार भी कराता है कि भेड़–बकरियों के बेचने और खरीदने पर कोई कर देय नहीं होगा। इस तरह हम देखते हैं कि यह आदिवासी सशक्तिकरण की कहानी है, जिसमें नायक राज परिवार की सेवा के एवज में राज–परिवार से अपने समाज का हित साधता है। इस लोककथा पर **अध्यक्षद्वय** ने इसे गोंडी–भाषा की अत्यंत महत्वपूर्ण लोककथा कहा।

विक्रम जी चौधरी : धरती का सच

विक्रम जी चौधरी ने चौधरी भीली भाषा की लोककथा 'धरती का सच' कहानी का पाठ किया। वर्तमान समय के लिए यह एक अति प्रासंगिक कहानी है। आज जिस तरह से ग्लोबल वार्मिंग, अंधाधुंध विकास और बेतहाशा मशीनीकरण का दौर चल रहा है और जिनकी वजह से पृथ्वी और पर्यावरण तथा जीव–जगत काल के गाल में समाते जा रहे हैं, उस स्थिति और परिस्थिति में इस कहानी के माध्यम से धरती को बचाने की गुहार–व्यक्त की गई है। **अध्यक्षद्वय** ने इस कहानी को समकालीन दौर में आदिवासी दर्शन व सोच की इसे द्योतक बताया।

निर्मला सामद : लुप्त होती भूमिज भाषा

निर्मला सामद 'लुप्त होती भूमिज भाषा' पर अपने आलेख में बताती हैं कि रोजगार की तलाश में भूमिजों के पलायन से भूमिज भाषा लुप्त होने के कगार पर पहुंच गई है और उसके सामने आज के दौर में सबसे बड़ा संकट यही है। जिन अन्य कारणों से भी भूमिज भाषा लुप्त हो रही है लेखिका अपने आलेख में उन पर भी प्रकाश डालती हैं। भूमिज भाषा को बचाने हेतु लेखिका सरकारी स्तर पर प्रयास करने की जरूरत पर भी बल देती हैं और इसके लिए वे अकादेमियों में भूमिज भाषा के प्रतिनिधियों को बैठाने की अहमियत पर प्रकाश डालती हैं। **अध्यक्षद्वय** ने अपनी टिप्पणी में इस आलेख को प्रामाणिक और प्रासंगिक बताया।

बेल्लाइया नायक तेजावथ : उसका जिहाद

बेल्लाइया नायक तेजावथ तेलुगु के कथाकार ने तेलुगु भाषा की 'उसका जिहाद' कहानी का पाठ किया। यह एक ऐसे युवक की कहानी है जो सिविल सर्विस की तैयारी कर रहा है लेकिन इसी बीच उनके पिता का देहांत हो जाता है और सब कुछ उलट–पुलट जाता है। गांव जाने पर वहां के हालात् का उसे पता चलता है। वह गांव के लोगों को जागरूक करना शुरू करता है। वह गांव को बदल देने का बीड़ा उठाता है और कुछ ही दिनों में गांव में क्रांतिकारी बदलाव आता है। यह आदिवासी सशक्तिकरण की कहानी है, जिससे यह भी संदेश निकलता है कि सरकारी सेवा में जाकर के ही हम अपने समाज की भलाई नहीं कर सकते बल्कि समाज सेवा करके भी हम अपने समाज और लोगों की भलाई कर सकते हैं। **अध्यक्षद्वय** ने टिप्पणी में कहा कि यह कहानी सत्यकथा के करीब है और आदिवासी समाज में ऐसे ही जिहादियों की जरूरत है। उन्होंने इसे एक आदिवासी सशक्तिकरण की कहानी बताया।

चंदालाल चकवाल : दूल्हा ठेके पर

चंदालाल चकवाल की राजस्थानी कहानी 'दूल्हा ठेके पर' एक दारुबाज दूल्हे की कहानी है, जो शादी में ससुराल आने की बजाय पूरी बारात समेत शराब के ठेके पर चला जाता है। दुल्हन उससे शादी करने से इनकार कर देती है। यह आदिवासी स्त्री के सशक्तिकरण की कहानी है। **अध्यक्षद्वय** ने इस कहानी को आज के दूल्हों का यथार्थवादी चित्रण कहा और ऐसी नायिका को कहानियों में गढ़ने की जरूरत पर बल दिया।

वाहरू सोनवणे : वनवासी नहीं आदिवासी

वाहरू सोनवणे प्रसिद्ध आदिवासी कवि ने भिलोरी भाषा की कहानी 'वनवासी नहीं आदिवासी' कहानी का पाठ किया। यह एक विशुद्ध राजनीतिक कहानी है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने आदिवासियों के 'वनवासी बनाम आदिवासी' जैसे सवाल को प्रमुखता से उठाया है। इस सवाल को कहानीकार ने एक घटना का जामा पहनाया है। इस महत्वपूर्ण राजनीतिक कहानी के माध्यम से लेखक आदिवासियों के लिए 'वनवासी' जैसे शब्द गढने के लिए एक विशेष राजनीतिक पार्टी और उसकी मातृ संस्था को भी फटकार लगाता है। कहानी के अंत में वह आदिवासी पात्रों के माध्यम से यह संदेश देने में भी सफल होता है कि आदिवासियों को 'आदिवासी' के रूप में ही पुकारा जाए। उसे संबोधित करने के लिए 'वनवासी' जैसे शब्दों की दरकार नहीं है।

अध्यक्षद्वय ने इसे एक राजनीतिक कहानी बताया और 'वनवासी नहीं आदिवासी' जैसी बहस के मुद्दे को कहानी के रूप में ढालने के लिए कहानीकार को विशेष रूप से बधाई दी।

सुनील गायकवाड़ : धाड़

सुनील गायकवाड़ ने 'धाड़' कहानी का पाठ किया। 'धाड़' आदिवासी स्त्री के सशक्तिकरण की कहानी है। यह एक ऐसी कहानी है जो अपनी बेइज्जती का बदला गांव के पटेल से लेती है। वह गांव के लोगों को अन्याय और जुल्म के खिलाफ जागरूक करती है। भले ही इसके लिए अन्त में उसे शहीद ही क्यों न हो जाना पड़ा है। **अध्यक्षद्वय** ने इस कहानी को प्रेरणास्पद बताया और कहा कि ऐसी बहादुर महिलाओं की आदिवासी समाज को दरकार है।

विश्राम वल्वी : जुलूम भूख

विश्राम वल्वी ने भिलोरी भाषा की कहानी 'जुलूम भूख' का पाठ किया। 'जुलूम भूख' एक समकालीन राजनीतिक कहानी है। इसमें एक बच्चे के भूख से दम तोड़ देने की घटना का मार्मिक चित्रण है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने पूरे देश के आदिवासी समाज में समय–समय पर भूख से मरने वाले लोगों का चित्रण किया है। इस कहानी को **अध्यक्षद्वय** ने देश के मर्म पर चोट करने वाली कहानी बताया।

रघुवीर सिंह मारको : जर और जोरू

रघुवीर सिंह मारको ने गोंडी भाषा की कहानी 'जर और जोरू' का पाठ किया। यह एक समकालीन आदिवासी कहानी है, जिसमें एक दिकू एक भोली–भाली आदिवासी लड़की को अपने जाल में फंसाकर उसके परिवार और आदिवासियों के हक–हकूक और मान–सम्मान के साथ खिलवाड़ करने लगता है। लेकिन कहानी के अंत में इस दिकू पात्र का बहुत ही बुरा अंत होता है। दो आदिवासी युवक ही गला रेतकर उसकी हत्या कर देते हैं। हरिराम मीणा और श्री गंगा सहाय मीणा ने इस कहानी पर अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी देते हुए इसे आदिवासी सशक्तिकरण का प्रतीक बताया। उन्होंने कहा कि आदिवासी क्षेत्रों में ऐसे दिकुओं की भरमार है, जो आदिवासी अस्मिता और उसके स्वाभिमान के साथ खेलने का काम कर रहे हैं।

शिशिर टुडू : नक्सली

शिशिर टुडू की संताली भाषा की कहानी 'नक्सली' का पाठ कराया गया। वे स्वयं नहीं आ पाए। यह एक समकालीन राजनीतिक कहानी है। यह एक ऐसे आदिवासी युवक की कहानी है, जिसे अपने हक–हकूक की मांग पर प्रशासन और व्यवस्था द्वारा नक्सली करार कर दिया जाता है। विद्रोही और क्रांतिकारी आदिवासी युवाओं की प्रशासन, व्यवस्था और राज्य द्वारा ऐसी नियति बना दी गई है। कहानी पर **अध्यक्षद्वय** ने कहा कि आज जो भी आदिवासी युवा इस सड़ी–गली व्यवस्था को बदलने की मुहिम छेड़ता है, उसे नक्सली करार कर दिया जाना आम बात हो गई है। यह अत्यन्त चिंता का विषय है। उन्होंने इसे यथार्थ का चित्रण करने वाली एक महत्वपूर्ण कहानी बताया।

बी. लक्ष्मी नारायण : परवाह किसे है

बी. लक्ष्मी नारायण की तेलुगु कहानी 'परवाह किसे है' को प्रस्तुत किया गया। वे स्वयं नहीं आ पाए। यह एक समकालीन तेलुगु कहानी है। कहानीकार ने आदिवासी बंजारा समुदाय की थाड़ जनजाति का चित्रण किया है, जिसमें बेटियों को आज भी अभिशाप मान कर, जनने के बाद ही उन्हें बेच दिया जाता है। बेटे का मोह इस कदर वहां व्याप्त है कि भले ही वह बुढ़ापे में मां–बाप की उपेक्षा करे, लेकिन हर–हाल में इस समाज और जनजाति को बेटा ही चाहिए। अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में **अध्यक्षद्वय** ने इस कहानी को आदिवासियों में बढ़ रही इस प्रवृत्ति को समाज के लिए खतरनाक बताया।

रोज केरकेट्टा : बिरूवार गमछा

प्रसिद्ध आदिवासी कथाकार **रोज केरकेट्टा** की खड़िया भाषा की कहानी 'बिरुवार गमछा' का पाठ करवाया गया। बीमारी की वजह से वे स्वयं नहीं आ पाईं। इसे हम आदिवासी संस्कृति, परम्परा, विरासत और पहचान की बेहतरीन कहानी कह सकते हैं। आदिवासी पहचान और अस्मिता इस कहानी के जरिए बड़ी खूबसूरती से उभरती है। **अध्यक्षद्वय** ने कहानी का इतना दमदार ताना–बाना बुनने के लिए कहानीकार रोज केरकेट्टा को बधाई दी और कहा कि इस कहानी के जरिए आदिवासियों की गरिमा और स्वाभिमान भी उजागर होता है।

बुद्धिजीवी और राजनेता मिलकर आदिवासी एजेंडे की मुहिम चलाएं : रमणिका गुप्ता

रमणिका गुप्ता ने राजनीतिक नेतृत्व विषय पर हस्तक्षेप करते हुए कहा–''रमणिका फाउंडेशन की इकाई ऑल इंडिया ट्राइबल लिटरेरी फोरम ने आदिवासी लेखकों के लिए आदिवासी मुद्दों को लेकर सन् 2002 में हुए आदिवासी सम्मेलन के अगले ही दिन 2 जून 2002 को 12 सूत्री राजनीतिक एजेंडा बनाया था। इस एजेंडे का एक मकसद था आदिवासी बुद्धिजीवियों में राजनीतिक चेतना और नेतृत्व पैदा करना। 1 जून सन् 2002 के उस सम्मेलन में यह प्रस्ताव भी लिया गया था कि आदिवासियों के लिए कांस्टिट्यूशन में जनजाति शब्द हटा कर 'आदिवासी' शब्द लिखा जाए। उस एजेंडे पर हमारी कई बैठकें हुईं। मेरा इस सेमिनार से यह प्रश्न है कि आज हमारी संसद में जितने आदिवासी सांसद या विधान सभाओं व विधान परिषद् में जितने आदिवासी सदस्य हैं ने इन सवालों को क्यों नहीं उठाया? कांस्टिट्यूशन में 'जनजाति' की जगह 'आदिवासी' शब्द लिखा जाए–यह सवाल दो ढाई वर्ष पहले भी मैंने अग्निवेश जी द्वारा आदिवासी मुद्दों पर बुलाए गए विभिन्न संगठनों की बैठक में उठाया था, जिसमें मुक्ति तिर्की भी थे।

हमारा दूसरा एजेन्डा था आदिवासियों को मातृभाषा में पढ़ाया जाए। इसे लेकर मुंडा जी ने उस समय सारी जगह चिट्ठियां लिखीं। पहले झारखण्ड में केवल स्नातक स्तर में 9 भाषाओं की पढ़ाई होती थी लेकिन आन्दोलन के बाद झारखण्ड सरकार ने स्कूली स्तर से ही 9 मातृभाषाओं में पढ़ाई शुरू करने का आदेश जारी कर दिया। आज आदिवासी भाषाएं लुप्त हो रही हैं। आल इण्डिया ट्राइबल लिट्रेरी फोरम द्वारा बनाए गए सभी एजेंडे पॉलिटिकल हैं। बाकी राज्यों में मातृभाषा में पढ़ाने के लिए आदिवासी विधायकों, सांसदों व नेताओं ने इस सवाल को अभी तक क्यों नहीं उठाया– मेरा यह प्रश्न सभी राजनेताओं से है?

विस्थापन, जमीन वापसी, विकास की गलत नीतियां भी हमारे एजेन्डे में शामिल हैं। इन मुद्दों को आदिवासी साहित्यकार तो उठाते रहे हैं, लेकिन राजनीतिक नेतृत्व ने अभी तक न संसद में और न ही राज्य की विधान सभाओं में इन मुद्दों पर अपनी असरदार उपस्थिति दर्ज करवाई? आदिवासियों का जो भारतीय धर्मग्रन्थों व शास्त्रों में विरूपीकरण हुआ, उस पर आजतक न बोला गया, ना ही कुछ किया गया। आदिवासी को शास्त्रों में, रामायण में बंदर, भालू, राक्षस बना दिया गया। उस अवमानना के दुरुस्तीकरण के लिए क्यों कोई राजनीतिक नेता या पार्टी अभी तक कुछ नहीं बोली? आज तक किसी इतिहासकार ने आदिवासियों का इतिहास भी नहीं लिखा। मंच (Forums) के इस 12 सूत्री एजेंडे को राष्ट्रीय स्तर के सभी आदिवासी साहित्यकारों ने सोच–समझकर बनाया था। पॉलिटिकल एजेंडे की बाबत प्रभाकर जी ने चर्चा की है लेकिन मेरा आप सब से अनुरोध है कि आप जिस भी पॉलिटिकल पार्टी में हों, कम से कम अपने सवाल तो उठाइए। मेरा सवाल यहां उपस्थित आदिवासी लेखक समाज से भी है। वे इन मुद्दों पर क्यूं नहीं अभियान चलाते, क्यों नहीं लिखते? इन सवालों को हमारे मंच ने उठाया है। मैंने विधान परिषद् तथा विधान सभा एवं जमीनी आन्दोलन से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक यह मुहिम चलाई। वासवी ने पत्रकारिता के माध्यम से इन मुद्धों को उठाया। मीणा जी ने उठाया, मैत्री जी ने उठाया है, मुंडा जी उठाते थे। यानी बुद्धिजीवी यह काम करते रहे हैं लेकिन इन सवालों को हमारे पॉलिटिकल नेता क्यूं नहीं गंभीरता से उठाते?

आदिवासी स्वर का एक मंच बने हरिराम मीणा

हरिराम मीणा–अभी का ये सत्र राजनीति पर केंद्रित है। मुझे अच्छा लगा कि वक्ताओं ने आदिवासी राजनीति पर बहुत अच्छी बात कही और आपलोगों ने सवाल भी सही उठाया कि चीजें अपडेट नहीं हैं, तो उनके सवाल पर गौर कौन करेगा? जब गौर ही नहीं करेगा, तो उससे बहस कैसे होगी, बहस भी होगी, तो उसके प्रति बहस की स्थिति भी नहीं आती। इसलिए एक राजनीतिक दबाव बनना चाहिए, जिसकी अभी कमी है। आपने जो स्पेशल झारखंड, छत्तीसगढ़ राज्यों की राजनीति की बात उठाई, हमें उम्मीद थी कि अलग से दो स्टेट बनने से झारखंड और छत्तीसगढ़ पूरे देश के आदिवासियों के आदर्श राज्य के रूप में उभरेंगे। लेकिन वहां का नेतृत्व भी किस तरह से फिसलता रहा है, उबरता रहा है इससे कोई अनजान नहीं है। कभी खास हो जाता है या कभी दूसरे की झोली में चला जाता है, यह एक बहुत

बड़ा यक्ष प्रश्न है, जिसे हम हल नहीं कर पाए।

रमणिका जी, हमें चाहिए कि एक किसी पॉलिटिशियन को यहां बुलाएं और उनसे ये सवाल पूछें। हम आप ही की तरह हैं। सारे सवाल हमारे जेहन में भी हैं। वासवी ने जो सवाल पूछे, स्वास्थ्य और शिक्षा के, ये सब पॉलिटिकल मुद्दे हैं और वे सरकार के एजेंडा में टॉप पर हैं भी। जो सरकार के एजेंडा के टॉप पर हैं वह पॉलिटिशियन के दिमाग में भी टॉप पर होने चाहिएं। मैं एक सांसद को जानता हूं, उन्होंने अपने संसदीय क्षेत्र का पूरा नक्शा बाकायदा कलर्ड (रंगीन) पिन लगाकर अंकित कर रखा है कि कहां ठीक चल रहा है, कहां औसत है, कहां कमी है, कहां ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। हिंदुस्तान में जितनी भी पॉलिटिकल पार्टियां हैं, उनकी कोई ना कोई आईडियोलॉजी है। उसकी अस्मिता के सम्मान के लिए, क्षेत्रीय राजनीतिक संरक्षण के लिए, उसी का वोट बैंक केन्द्रीकृत है और इससे जो फायदा होता है, वह इंडिविजुअलाइज्ड हो जाता है। पूरे हिंदुस्तान के जितने भी आंचलिक राजनीतिक दल हैं, वे एक साथ कैसे एक मंच पर आएं और आदिवासी स्वर का एक मंच कैसे बने, यह भी एक बड़ी समस्या हमारे समक्ष है आपने आदिवासी बुद्धिजीवियों को एक राजनैतिक मंच तो बना दिया, पर राजनैतिक स्तर पर यह नहीं बन पाया। मैं साथियों से एक बात और कहूंगा कि आज राजनीति में आने का कारण स्टेट्स पाना हो गया है। बहुत से ऐसे लोग भी हैं जो अपने कुकर्म, खुराफ़ात, अपहरण आदि को अपनी राजनीति की आड़ से ढंकते हैं। ये हम सब जानते हैं।

दो मुद्दे आज के सत्र में हैं राजनीतिक नेतृत्व और दूसरा मीडिया। हमारे ही साथियों में गंगाराम और प्रभाकर जी ने राजनीतिक नेतृत्व की बाबत बहुत सारे सवाल उठाए। गंगाराम गागराई ने आदिवासियों के प्रति सरकारी रवैये, गैर आदिवासी रवैये की बात की। यह बात जान लेनी चाहिए कि बिना राजनीतिक नेतृत्व के कहीं भी कोई परिवर्तन संभव नहीं है। बात आई नेतृत्व के कोटे की, जो सीमित ही है। आप जनरल सीट पर जाकर जीतो, जैसे राजस्थान में एकजुटता आई तो जितना कोटा था उसमें असेम्बली में करीब छह सात सीट कोटा से ज्यादा जीत लीं। प्रभाकर तिर्की जी का बहुत बड़ा अनुभव है। उन्होंने एक बड़ा सवाल उठाया है नेतृत्व निर्माण का। आज हम इसी पर बात कर रहे हैं। हमारे साथी जितेंद्र मुखी ने मीडिया किस तरह आदिवासियों को देखता है ये सारे संदर्भ बताए। पिछले हफ्ते मैंने शिबू सोरेन साहब से दो बार लंबी भेंट की, उनके घर रांची में। पीए संगमा साहब के साथ मैंने कई–कई बार बात की। डा. किरौड़ी लाल मीणा से बात की। दरअसल आदिवासियों के आधारभूत सवाल जयपाल मुंडा ने उठाए थे। पर वे एकमात्र आदिवासी सदस्य थे संविधान निर्माण सभा में। वैसे तो 6 सदस्य थे। संविधान सभा की बैठकों के दौरान जितने प्रावधान आदिवासियों के लिए लागू किए गए हैं या संविधान में शामिल किए गए हैं, वे केवल जयपाल सिंह मुण्डा की वजह से हैं। चाहे पांचवीं सूचि हो, चाहे नौवीं 242 हो। नेहरू जी से इनकी बहस हुई, तो जयपाल मुंडा जी ने कहा था कि "वी आर नॉट पार्ट ऑफ योर इंडिया।" झारखंड की डिमांड तो उन्हीं के टाइम से शुरू हो गई थी। उन्होंने ही नेहरु से कहा था–"झारखंड को देश का हिस्सा नहीं माना गया।" हम समझते हैं कि या तो कास्ट बेस्ड इंडिया जाति पर आधारित हो सकता था या ट्राइबल इंडिया। दिक्कत ये है कि कास्ट बेस्ड इंडिया तो एनी हाऊ कुल मिलाकर एकजुट हो गया, लेकिन आदिवासी इण्डिया एक नहीं हो पाया।

सवाल यहां आदिवासी राजनीतिक नेतृत्व का है। हम परंपरा में जाएं तो ऐसा नहीं है कि आदिवासियों में राजनीतिक नेतृत्व नहीं रहा। गणतंत्र की अवधारणा सबसे पहले आदिवासी क्षेत्रों में ही रही है। गणतंत्र का उनका अनुभव है। पुरानी पंचायतों का उनका अपना अनुभव है। मुखिया चुनने का उनका अनुभव है। सामूहिक नेतृत्व द्वारा निर्णय लेने का उनका लंबा अनुभव है, जिसका प्रयोग भी होता रहा है। इसलिए ऐसा नहीं है कि पंरपरा में आदिवासी राजनीतिक नेतृत्व नहीं रहा। लेकिन हिंदुस्तान की आजादी के बाद क्या कारण रहे, कि आदिवासियों में राजनीतिक नेतृत्व नहीं उभरा, जबकि दलितों में वह मजबूती से सामने आ गया। वे एक पॉलिटिकल फोर्स, एक पॉलिटिकल ग्रुप के रूप में काम करते हैं। उनकी बातों को कोई नज़रअंदाज़ करे, ऐसी स्थिति में कोई नहीं है। आप महाराष्ट्र में देख लीजिए, उत्तर प्रदेश में देख लीजिए, साऊथ में देख लीजिए, दलितों में नेतृत्व आ गया है। आदिवासियों में नहीं आ रहा? दरअसल, दलितों में एक महानायक हैं बाबासाहेब आम्बेडकर। महाराष्ट्र के दलित और आदिवासी मिलकर बाबासाहेब आम्बेडकर को एकजुट होकर नहीं देखते। अन्य राज्यों में, झारखंड में बिरसा मुंडा मिलेंगे, राजस्थान में गोविंद गुरू मिलेंगे, आपके महाराष्ट्र में ख्वाजा नाईक मिलेंगे, मतलब ये कि एक

रोल मॉडल एक प्रेरणा का स्रोत एक आदर्श महापुरुष का होना जरूरी है। हमारे जितने भी नायक हैं सारे आंचलिक हैं, हम स्थापित नहीं कर पाए कि कोई एक ही सूत्र ले लें, एक विचार का सूत्र ले लें, राजनीति का सूत्र ले लें, एक परिवर्तन का सूत्र ले लें। कहीं ना कहीं एक परंपरा के महानायक के स्रोत रहे हैं, जो हमें ताकत देते रहे हैं। लेकिन यह जान लें कि लोकतांत्रिक जनतांत्रिक प्रणाली में अगर कहीं कोई परिवर्तन होगा, तो वह राजनीति के माध्यम से ही होगा।

हम बहस करें, एजेंडा बनाएं अपनी रिपोर्ट पेश करें, वह अपनी जगह महत्वपूर्ण है लेकिन स्थितियों को आगे बेहतर बनाने की कोशिश की पहल तो संसद में ही होगी, विधानसभा में होगी, जहां कानून के ड्राफ्ट बनाए जाते हैं। जहां नीतियां बनाई जाती हैं, वहीं से पहल शुरू होगी। ऐसा नहीं है कि आदिवासी के कल्याण के लिए योजनाएं नहीं हैं। बहुत योजनाएं हैं। बहुत प्रावधान हैं बहुत पैसा है। लेकिन वह फंड कहां जा रहा है? मैं एक उदाहरण दे रहा हूं, हमारे राजस्थान में 17 साल तक एक सीएम रहे। पश्चिमी राजस्थान के आदिवासी बेल्ट का अधिकांश पैसा उन्होंने उदयपुर के सौंदर्यीकरण में लगा दिया। कोई पूछने वाला नहीं था, जबकि वे वहां सांसद भी रहे हैं, विधायक भी रहे हैं। निर्धारित कोटा के हिसाब से पैसा खर्च हो–किसी ने इस पर सवाल नहीं उठाया। नेता का पॉलिटिकल ऑडिट हो इस पर कोई नहीं बोला। नौ राज्यों में ट्राइबल एडवाइज़री कमिटी बनी। मैं आपको बता दूं हर गर्वनर को स्पेशल पावर है। यह भी अनिवार्य है कि जो भी होगा वह ग्राम सभा द्वारा निर्णय लेने पर ही होगा। हैदराबाद हाईकोर्ट के अपेक्षानुसार उसके एरिया के विकास का 20 प्रतिशत उसे लोकल आदिवासी के लिए ही खर्च करना है। केवल आंध्रप्रदेश में गर्वनर ने एक बार अपनी इस स्पेशल पावर का इस्तेमाल किया है। जब से संविधान बना है, तब से आदिवासियों के हित के लिए बनाई गई इस स्पेशल पावर का इस्तेमाल किसी ने नहीं किया। ऐसा है कि कोई गर्वनर कमी बन भी गया, तो उसे पता ही नहीं कि उसे यह पावर प्राप्त है। इस इंडियन डेमोक्रेसी में बहुत सारे हथकंडे हैं, बहुत सारी चलाकियां हैं, साम, दाम, दंड, भेद, जिन्हें आदिवासी नहीं समझते। वह भोला–भोला सहज चलता है और इतना भला होता है कि एक आदिवासी नेता रिश्वत के पैसे भी बैंक में जमा करा देता है। वह इतना भोला है कि वह नहीं समझता की यह व्हाईट मनी नहीं है, कि वह पकड़ा जाएगा। लेकिन जब आप में इतना भोलापन हैं, तो कौन टिकने देगा आपको पालिटिक्स में? इसलिए इस भोलेपन से काम नहीं चलेगा।

हम भी नेता चुन कर भेज देते हैं और उससे अलग हो जाते हैं। हम उसका कान नहीं पकड़ते, हम उस पर दबाव नहीं डालते। ये सारी बातें आदिवासी राजनीतिक नेतृत्व के निर्माण के सवाल पर उठेंगी। लेकिन एक बात तय है कि अगर परिवर्तन करना है, तो पॉलिटिकली साउंड होना होगा क्योंकि डेमोक्रेसी में सब कुछ आसान है, अगर आपकी चलती है तो। पॉलिटिकल साइंस में एक डेमोक्रेटिक सिस्टम है। फास्ट आमेन की थ्योरी है, डेमोक्रेसी सिस्टम एक ब्लाइंड बॉक्स है। इधर इनपुट आता है उधर आउटपुट जाता है। जो जिस ताकत से और तादाद से उसमें इनपुट डालेगा, उसके अनुपात में ही आउटपुट उसके पक्ष में मिलेगा, सीधा–सा सिद्धांत है यह। अगर वहां जोर से बहस करोगे, ताकत लगाकर कोई बात कहोगे, तो आपकी बात मानी जाएगी। एक स्टेट 24 घंटे के भीतर ओबीसी में शामिल ही जाती है, क्योंकि संगठन का डंडा है। एक वे भी है जिन्हें रिजर्वेशन मिलता है लेकिन दाएं–बाएं करके कोर्ट कचहरी करके उसे छीन लिया जाता है। ये जो आरक्षण के बलबूते पर लीडरशीप में उभरते हैं, उनका कन्ट्रिव्यूशन है इसमें कोई शक नहीं है। जब भी कोई स्ट्रांग लीडरशीप उभरती है, तो ऊपर से काट छाट दी जाती है। नाम के लिए इन्हें ट्राइबल नेता कहते हैं–असल में बागडोर ऊपर के नेता के हाथ में रहती है।

दलित इस बात को समझता है कि वह वर्चस्वकारी शक्तियों की बस्ती में रह रहा है। वह यह भी जान गया है कि उनके खिलाफ साजिश कौन रच रहा है? वह दास की तरह काम करते आया है, यह वह जान रहा है। लेकिन उसे पता है कि कौन उससे बदमाशी कर रहे हैं। आदिवासी दूर–दराज़ जंगल में रह रहा है। उसे पता ही नहीं कि उसके खिलाफ साजिश कहां हो रही है? उसके खिलाफ साजिश दिल्ली के महानगर में हो रही है, एसी रूम में ही रही है, उसे बिल्कुल पता नहीं है। एक बुलडोजर जाता है एमएनसी या सत्ता का और उसकी बस्ती को तहस–नहस कर देता है। इसलिए हमारे पास बहुत सारे इशू हैं बहस के लिए–समाधान कि लिए। यह बहुत ही महत्वपूर्ण सत्र है।

रोहित वेमुला की स्मृति पर आधारित जाति भेदभाव के घेरे में उच्च शिक्षा केन्द्र

विकास कुमार

हाल ही में जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के समाज–विज्ञान संस्थान–1 में आयोजित रोहित वेमुला की स्मृति पर एक विषय के रूप में 'जाति भेदभाव के घेरे में उच्च शिक्षा केन्द्र' को लेकर आयोजककर्ता सेंटर फॉर दलित लिटरेचर एंड आर्ट ने संवाद का आयोजन किया, जिसकी अध्यक्षता प्रो. विमल थोरात ने की। इस सभा में सभी वक्तागणों तथा लेखकों व शोधार्थियों ने रोहित वेमुला को आत्महत्या करने को मजबूर होने की घटना के संदर्भ में उच्च शिक्षा केन्द्रों में जातीय भेदभाव पर दुख प्रकट किया। मुख्य अथितियों में डॉ. विमल थोरात, भाषा सिंह, सवी सावरकर, डॉ. प्रमोद मेहरा, डॉ. रामचंद्र, डॉ. केथरी, विल्सन जी, मीडिया विशेषज्ञ दीलिप मण्डल, रजनी तिलक, कर्मशील भारती, पोल दिवाकर, प्रो. अलोने, प्रो. संघमित्रा आचार्य, बिना जी, आदि अन्य विद्वानों ने अपने अमूल्य विचार रखे।

प्रोफेसर विमल थोरात के अपने भाषण में रोहित वेमुला की मौत को सांस्थानिक हत्या करार दिया, जिसका एक कारण रोहित का दलित होना भी था। भाषा सिंह ने रोहित वेमुला की मौत को जेंडर विषय से जोड़ कर परखा। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार से विदेश मंत्रालय जाति के प्रश्न में अपनी दिलचस्पी दिखा रहा है, वह पूर्ण रूप से चौंकाने वाला बिंदु है और वह इस बात की मशक्कत में लगा हुआ है कि रोहित वेमुला दलित था ही नहीं। जबकि उसके जाति प्रमाण–पत्र चीख़–चीख़कर कह रहे हैं कि वह अनुसूचित जाति से सम्बंध रखता था। इस कार्यक्रम के तहत कई गणमान्य अध्ययनरत्त लेखकों व शोधार्थियों ने अपनी आपबीती भी बताई, जिसके अंतर्गत उन्हें बराबर जातिगत प्रताड़ना तथा भेदभाव का आभास कराया जाता है।

इसी तरह यूथ फॉर सोशल जस्टिस के अध्यक्ष तथा शोधार्थी सुरेन्द्र जी ने दिल्ली विश्वविद्यालय में जो एस.सी/एस.टी. विद्यार्थियों का एडमिशन नहीं हो पा रहा, उस पर प्रकाश डाला। साथ ही शोधार्थी मुन्नी भारती ने बताया कि किस प्रकार उसके एक दलित संगठन से जुड़ने मात्र से ही शिक्षक इंटरव्यू में साक्षात्कारकर्ताओं के बीच एक डर का माहौल इस रूप में बन जाता है कि जैसे दलित कुछ बोल देगा और दलित संगठन टूट पड़ेंगे। इसी प्रकार विल्सन जी ने अपने विचारों के साथ गुरु द्रोणाचार्य अवार्ड के स्थान पर एकलव्य अवार्ड न होने पर प्रश्न चिन्ह लगाया। जे.एन.यू. के डॉ. रामचंद्र जी ने इस लड़ाई को किसी अन्य विचारधारा के स्थान पर अम्बेडकरवादी विचारधारा के तहत लड़ने पर ज़ोर दिया। मीडिया विशेषज्ञ दिलीप मंडल ने भी विश्वविद्यालयों में पी.एच.डी. डिग्रियों में किस प्रकार धांधली हो रही है को उजागर करते हुए जातीय परिपेक्ष्य को सामने रखा। इस सम्पूर्ण कार्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में डॉ. हरेश परमार ने इस समारोह अथवा संवाद में उपस्थित सभी अतिथिगण तथा शोधार्थियों का आभार व्यक्त करते हुए इस संवाद गोष्ठी का समापन किया।...

शोधार्थी
साऊथ एशियन स्टडीज सेंटर/एसआईएस
जे.एन.यू, नई दिल्ली

निकष

जहां प्रेम कमजोरी नहीं ताकत है

अशोक सिंह

एक समय था जब पत्र–पत्रिकाएं कम आती थीं और हमारे पास पुस्तकें भी कम थीं तो पढ़ना ज्यादा होता था। अब जबकि पत्र–पत्रिकाएं भी ज्यादा आती हैं और पुस्तकें भी बहुत हो गई हैं, तो पढ़ना–लिखना कम हो गया है। ऐसे में अक्सर मुझे अपने गुरु की एक पंक्ति याद आती है, जो आज भी मेरे दिमाग की डायरी में अंकित है। पढ़ने–लिखने के सवाल पर वे कहा करते थे कि ''एक पंक्ति रचने (लिखने नहीं) से पहले एक हजार पंक्तियां पढ़ा करो।'' निस्संदेह यह वाक्य किसी भी रचनाकार के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है। लेकिन सच कहूं तो यह वाक्य आज मेरे भीतर भी तख्ती में लिखे एक आदर्श वाक्य की तरह मात्र टंगा रह गया है। बावजूद एक महत्वपूर्ण और रेखांकित करने वाली बात यह भी है कि कुछ पत्र–पत्रिकाएं, उसमें छपी रचनाएं और पुस्तकें ऐसी भी होती हैं, जो हमें खुद पढ़वा लेती हैं। कुछ तो यहां तक कि दोबारा–तीबारा तक भी पढ़वा लेती हैं। उसी में अभी हाल के दिनों पढ़ी गई पुस्तकों में से राहुल राजेश का कविता संग्रह 'सिर्फ घास नहीं' भी एक है।

कहते हैं अनुभूति आसान है, अभिव्यक्ति कठिन! और यह सच भी है। लेकिन उससे भी बड़ा सच यह है कि अपनी जिन्दगी के अनुभव व अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व जितना सहज, सरल व व्यावहारिक होगा, उसके अंदर से निकलने वाले विचार और उसको अभिव्यक्त करने के तौर–तरीके भी उतने ही सहज, सरल व व्यावहारिक होंगे। राहुल राजेश का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही है, जिसका प्रभाव उनके कृतित्त्व पर देखा जा सकता है।

साहित्य अकादेमी की नवोदय योजना के तहत प्रकाशित उनके पहले कविता संग्रह 'सिर्फ घास नहीं' से गुजरते हुए कई चीजें एक साथ हमारा ध्यान खींचती हैं। एक तो राहुल का अपनी कविता में सहज होना और दूसरा बिना किसी लाग–लपेट के सीधे–सीधे अपनी बातों को कहना। वह भी बोल–चाल की भाषा में एक विशेष प्रकार के आंतरिक लय के साथ, सरल से सरल शब्दों तथा छोटे–छोटे वाक्यों में। धरती, आकाश, पाताल और देश–दुनिया पर बड़ी–बड़ी बातें कहकर शब्दों की बाजीगिरी करने वाले बड़बोले कवियों से अलग बिल्कुल अपने आसपास की मामूली से मामूली चीजों से जुड़कर उसे कविता की परिधि में शामिल करना, जिसमें अपने घर परिवार, गांव–गिरांव और अंचल से गहरा जुड़ाव बनाए रखना जैसी चीजें महत्वपूर्ण हैं। साथ ही प्रेम के सकारात्मक पक्षों का समर्थन कर उसे कमजोरी नहीं ताकत के रूप में स्वीकार करते हुए, उससे ऊर्जा लेना जैसी बातें भी राहुल को अपनी पीढ़ी के उन तमाम हमउम्र युवा कवियों की भीड़ से अलग करती हैं, जो कविता रचने से ज्यादा लिखने और ज्यादा से ज्यादा छपकर कवियों की पंक्ति में खड़े हो अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में विश्वास रखते हैं।

अब बात जहां तक 'सिर्फ घास नहीं' कविता संग्रह को देखने–पढ़ने व समझने की है, तो मेरी समझ से राहुल राजेश भी आम जीवन में अपने आसपास वही सब कुछ देखते–सुनते हैं, जो बहुत सारे लोग देखते–सुनते हैं लेकिन जब कुछ कहने की बात आती है तो वह कुछ ऐसा कह जाते हैं जो कोई नहीं कहता या बहुत कम ही लोग कह पाते हैं। वह भी कुछ इस अंदाज में जहां न तो कोई बड़बोलापन है और न ही एक साथ बहुत कुछ कह जाने की हड़बड़ाहट। बल्कि सादगीपूर्ण तरीके से शांत लहजे में। 'बेर' शीर्षक कविता में 'बेर' को फलों के बीच 'आदिवासी' कह उन्होंने जिस तरह चौंकाया है, वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है–'सेब

संतरे/आम–अंगूर/के बीच बैठूं/इतनी बिसात नहीं/ मैं जंगल का बेर हूं/मेरी कोई जात नहीं/कहने को तो मैं/उनका साथी हूं/लेकिन फलों में आदिवासी हूं।' गौर करें तो ये पंक्तियां अद्भुत व अविस्मरणीय तो हैं ही, प्रयास करके आदिवासी मुद्दों पर सैकड़ों कविताएं लिखकर खुद को आदिवासियों के हितैषी कवि कहने वाले कवियों पर भी भारी पड़ती हैं।

कविता के संबंध में कहा जाता है कि कविता की रचना, कवि समय की आंतरिक मनोदशाओं, प्रवृत्तियों, चेष्टाओं, क्रियाविधियों व कार्यकलापों से निर्मित संबंधों से उर्जस्वित संस्कृति और एक नई मूल्य व्यवस्था के प्रस्फुटन से होती है। इस काम के लिए रचनाकार को पूरे जीवन पर नजर रखनी पड़ती है। इतना ही नहीं उसे पूरा चौकन्नापन भी रखना पड़ता है। इस परिप्रेक्ष्य में देखें–परखें तो राहुल राजेश अपनी रचनाओं में न सिर्फ जीवन के प्रति बल्कि अपने आसपास के परिवेश के प्रति भी सजग दिखाई पड़ते हैं। चाहे वो घर परिवार का मामला हो या समाज का। या फिर अपने आसपास घटित हो रही विभिन्न घटनाओं का। रिश्ते के टूटने–बिखरने की बात हो या मन में प्रेम के प्रस्फुटन की। या फिर बाजार के बढ़ते दबाव और उसके प्रभाव से बदलते वर्तमान परिदृश्य में बनती–बिगड़ती स्थितियों परिस्थितियों की। सब पर बड़ी संजीदगी और साफगोई से कविता कहने का सामर्थ्य राहुल राजेश में है।

वैसे अन्य कवियों की तरह मां, पिता और बहनें भी इनकी कविता के केन्द्र में हैं लेकिन 'कहन' का अंदाज जुदा है। वह भी इतना सूक्ष्म कि अन्यत्र दुर्लभ है। संग्रह की पहली कविता 'परिवार' में जहां एक तरफ वे मां के संबंध में कहते हैं–'मां, घर की नींव/चूल्हे की आंच/प्रार्थनाओं की नदी/संबंधों की अर्दली/हम सबकी नींद।' वहीं दूसरी तरफ पिता के संबंधों में कहते हैं–'इच्छाओं जरूरतों के अथाह समुद्र में/एक मजबूत नाव/जिस पर सवार पूरा का पूरा घर' इसी कड़ी में आगे भी वह बहन, भाई, और दादा–दादी के बारे भी ऐसा ही कुछ कहते हैं जिससे घर–परिवार में रिश्तों के महत्व और उसके प्रति गहरी आस्था का पता चलता है। संग्रह में मां, बहनें, मां एक, दो जैसी कुछ और उत्कृष्ट व महत्वपूर्ण कविताएं भी हैं जिनको इस कड़ी में जोड़कर देखा–परखा जा सकता है। बानगी के तौर पर उसकी कुछ पंक्तियां देखें–'मां है तो/बन जाती है/मेरे और पिता के बीच पुल/बुखार में गर्दन का ताबीज/पिता के गुस्से पर पानी/मां है तो देर से लौटकर नहीं आते पिता...।' मां को याद करने के साथ–साथ वे पिता का वसीयतनामा भी नहीं भूलते, जिसमें पिता ने कहा है–'नए कपड़े पहनो जरूर/लेकिन पुराने कपड़ों से भी रखो मोह/कि इसी में बसता बीते दिनों का स्वाद/मत लेना किसी की आह/कुछ मांगना ही हो तो/बस मांगना थोड़ा आशीर्वाद/ देना ही हो कुछ तो/देना अपना विश्वास/बुरा बनने का भी हक है तुम्हें/लेकिन भला बने रहने का हक भी/तुमसे कोई छीन नहीं सकता।'

राहुल राजेश की कविता में कोलाहल नहीं, शांत मनोरम वातावरण की दीप्ति झिलमिलाती है। वह भी मामूली से मामूली चीजों में। संग्रह के नामकरण पर केन्द्रित 'सिर्फ घास नहीं' कविता में वे कहते हैं–'लगभग सफेद सी इनकी जड़ें/बित्ते–भर से भी नन्हा इनका कद/कहां से लाती इतना गाढ़ा हरापन/किनकी आंखों से चुराया यह बांकपन/पशुओं के थन में उमगता यह क्षीर/कोई विज्ञान नहीं.../इन घासों का मातृत्व।' अन्न, नमक, गन्ना, बांस, पानी, पत्तियां और पहाड़ पर सांझ आदि कविताओं में कुछ ऐसी ही झलक देखी जा सकती हैं। इतना ही नहीं उन कविताओं में सहज प्रवाह, संगीतात्मकता और आंतरिक लय को भी शिद्दत से महसूसा जा सकता है। वह भी बाजारवाद के इस दौर में लोकधर्मी चेतना के साथ। कहा भी गया है कि यदि कविता लोकतत्वों, लोक रूपों को अपने भीतर रचना चाहती है, तो उसका काम नागर भाषा से नहीं चलेगा, उसे लोक भाषाओं के पास जाना होगा। लोक–छंदों और लोक–धुनों में जीना होगा। राहुल राजेश अपने कविता–कर्म में बखूबी इसका अनुपालन करते हैं। 'नमक' शीर्षक कविता के प्रवाह और लय को देखें–'पत्तियों की हरियाली में हूं/चेहरे की लाली में हूं/प्रेम की प्याली में हूं/स्वाद की थाली में हूं/मुल्ला–पंडित/ सबके घर–बार में हूं/अरबों–खरबों के व्यापार में हूं/खुले बाजार में हूं/नमक हूं तो क्या हुआ/ टाटा–बिरला के दरबार में हूं।'

गौरतलब है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में बाजार के खिलाफ बिना किसी शोरगुल और नारेबाजी के जिस तरह अपनी लोकधर्मी चेतना के साथ कवि

अपनी देशज चीजों को उसकी महत्ता के साथ स्थापित कर उसकी वकालत करता है, वह प्रशंसनीय ही नहीं अन्य लोकधर्मी कवियों के लिए अनुकरणीय भी है। 'बांस' शीर्षक कविता देखें तो बांस का मानवीय स्वरूप खड़ा कर उसके हवाले से कवि कहता है–'बांस हूं/लेकिन दर्जे में घास हूं/सूप–डाली बन/घर–आंगन में टहलता हूं/खाट बन जहां चाहूं/पसरता हूं/लोहे से कम नहीं हूं/प्लास्टिक से मेरी होड़ नहीं/बेंत भी मेरा जोड़ नहीं/ फाइबर के सामानों–सा/मैं भी बैठक–घरों में सजता हूं/उनमें चमकीला ठंडापन/ मुझमें ठेठ गंवईपन है/उसमें शहरी वैभव/मुझमें माटी का यौवन है/शादी का मंडप बनाओ/या तीस मंजिली इमारतें/हर जगह मैं काम आता हूं/चिता तक न सही/बिजली शवदाह–गृहों तक/मैं अब भी जाता हूं।' इसी कड़ी में 'गन्ना' शीर्षक कविता को जोड़कर देखें तो समकालीन कविता में राहुल राजेश की पकड़ के साथ–साथ बाजार की समझ और भाषा की सहजता, सरलता और शब्दों के प्रयोग के प्रति सजगता व काव्यानुशासन के अलावा लोक जीवन से उनके गहरे जुड़ाव को भी बारीकी से देखा–परखा जा सकता है–'गन्ना'–पाकर मुट्ठीभर प्यार/पक कर तैयार/भरपूर रसदार/विदा होता हूं खेतों से/पिसता हूं निचुड़ता हूं/उबलता हूं जलता हूं ढलता हूं/तब जाकर पहुंचता हूं चाय के प्यालों में/गरीब के निवालों में/ बोतलबंद शीतल पेयों के/इस लकदक बाजार में जब कोई/मुझ तक खिंचा आता है/ न जाने किस आदिम प्यार में/मैं झट निचुड़ता हूं भरदम/उसके सत्कार में/सचिन–शाहरुख सौरभ के बूते टिकी हैं ये बोतलें/मैं तो बाबू टिका हूं/बस अपने बूते इस बाजार में!' उसी कड़ी में 'पारपत्र' कविता को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता जो बाजारवाद पर लिखी एक महत्वपूर्ण कविता है, जिसमें कवि अपने गहरे अनुभव से कहता है–'समाज के सिर्फ उस वर्ग को मिलेगा पारपत्र/जिनके पास हो एक बेहद तेज–तर्रार भाषा/और ऐसा घर कि जिसमें दमक सके/एक बेहद सम्मोहक बाजार।' यहां तक कि कवियों को भी सावधान करते हुए कवि कहता है–'कवियो, सावधान/आपको नहीं मिल सकता पारपत्र/क्योंकि आपकी संवेदनशीलता विश्व–बाजार में/कहीं दर्ज नहीं है।'

राहुल राजेश के यहां हताशा, अवसाद और नश्वरता का गान नहीं है। उम्मीद और आस्था से उनकी कविता भरी है। यहां तक कि दुख को भी सकारात्मक तरीके से देखने और उससे ऊर्जा लेने की अदम्य जीजीविषा कवि के भीतर मौजूद है, दुख के बिना 'और दुख के साथ' कविताओं को इस संदर्भ में देखने–समझने का प्रयास किया जा सकता है, जिसमें कवि कहता है कि 'यह तुम्हारी आस्था नहीं/दुख ही है जो/तुम्हें ले जाता है/मंदिर के द्वार तक/तुम ईश्वर को नहीं/अपने दुखों को पूजते हो/यह तुम्हारा दुख है/शहर में न खप पाने का/कि बरबस याद आ जाता है/तुम्हें अपना गांव/यह दुख ही है/जो बनता है सेतु/मां और ब्याही बेटी के बीच।' आगे आशा और उम्मीद से भरे कवि का दुख के प्रति सकारात्मक नजरिया देखिए–'तुम्हारे घर की मुंडेर पर/यह दुख ही बैठा है कौवा बन/जो जता रहा है/आने वाला है कोई सुख।'

इसी क्रम में संग्रह की अंतिम कुछ कविताओं में 'दुख का साथ' कविता की चंद पंक्तियां भी गौरतलब हैं–'दुखी होने का मतलब/सुखों से वंचित होना नहीं होता/मसलन तब भी सत्तू–प्याज और बासी भात/मजे से खा सकते हैं आप/दुख हो साथ/तो सुख की क्रूरताओं से/बचे रह सकते हैं आप!' आमतौर पर देखा गया है कि अधिकतर कवि दुख से टूटने–बिखरने का राग अलापते हैं और सुख में आनंद का अनुभव कर संतोष का गान गाते हैं। दुख में सुख की अनुभूति और सुख की क्रूरताओं को देखने–दिखाने की सूक्ष्म दृष्टि और संवेदना विरले ही रखते हैं। राहुल राजेश भी उनमें से एक हैं। यही कुछ है जो राहुल राजेश को उन्हें अपने हमउम्र कवियों की भीड़ से अलग पहचान देती है। मेरी समझ से कविता का सामाजिक सरोकार भी यही है और कवि कर्म का लक्ष्य भी, जिसमें राहुल राजेश पूरी तरह खरा उतरते हैं।

प्रेम को लेकर भी राहुल राजेश का नजरिया कुछ ऐसा ही है जो औरों से भिन्न कुछ अलग हटकर है। भाषा में बची रह गई कुछ अस्फुट ध्वनियों से प्यार की भाषा रच लेने वाले राहुल राजेश अपने प्रेम–विषयक भिन्न–भिन्न कविताओं में प्रेम के नए–नए अर्थों की तलाश करते हैं वह भी दैहिक सौंदर्य से परे हटकर, जिसमें प्रेम जीवन की कमजोरी नहीं ताकत और ऊर्जा बनकर सामने आता है। बानगी के तौर पर 'प्रेम में इच्छाएं' कविता की चंद पंक्तियां देखिए–'हमारा प्रेम ऐसा न हो/कि जीने की इच्छा

से भारी हो जाए/एक दूसरे में बिछड़ जाने का दुख/चाहता हूं हमारा संबंध ठीक वैसा हो/जैसा होता है जलते हुए लैम्पपोस्ट और रास्ते के बीच।' उसी कविता की अगली पंक्तियां भी देखिए–'मैं तुमसे इसलिए नहीं करता प्रेम कि/मैं तुम्हारे प्यार में अंधा हो जाऊं/बल्कि इसलिए करता हूं कि/बची रहें मेरी आंखें अंधी होने से/इस बेमुरौव्वत वक्त में।' इस तरह जीवन में प्रेम को सकारात्मक तरीके से देखने–दिखाने और उसमें जीने की प्रेरणा से भरी उनकी कई कविताएं ऐसी भी हैं जो न सिर्फ पठनीय व मर्मस्पर्शी हैं बल्कि अविरमरणीय भी हैं, जिसे पढ़ते हुए भीतर देर तलक उसकी अनुगूंज महसूस की जा सकती है। इन कविताओं की विशेषता यह है कि कविताएं उनके जीवन की निजी वेदना से निःसृत होती हुई एक वृहत्तर जीवानुभवों में बदल जाती हैं, जिसका क्षितिज दूर तक फैला दिखाई पड़ता है।

'उस तरह तो बिल्कुल नहीं' शीर्षक कविता में प्रेम की परिधि का विस्तार व फैलाव तो देखते ही बनता है–'रतजगे तो थे पर उनमें तुम नहीं/मेरी बेरोजगारी थी, बूढ़े पिता थे/और अनब्याही बहनें थीं/बरबस याद आई तुम और/बरबस भूला तुम्हें/दाल–रोटी की चिंताओं में/जब भी चाहा तुम्हें फोन करूं/बूथ पर जाकर लौट आया/तुम्हारी आवाज से कहीं ज्यादा जरूरी लगे/जेब के दो रुपये/कुछ इस तरह किया/उस तरह तो बिल्कुल नहीं/जिस तरह करना चाहिए/किसी लड़की से प्रेम।' संग्रह में प्रेम के इंद्रधनुषी रंग से रंगी कुछ ऐसी ही कविताएं हैं असुदंर का सौंदर्य, पहली बार, कोई तो हो, अंततः थोड़ा–सा, स्वीकारता हूं मैं, ठीक इसी वक्त, एक आधुनिक प्रणय निवेदन, तकिया, मुझे अब भी तलाश, आज इस तरह, प्रेम में जीवन, तुम्हें कोई हक नहीं, पाखी के लिए विदा गीत और मैं एक ऐसी औरत से प्रेम करता हूं जैसी कविताएं। आंकड़ों की भाषा में कहें तो संग्रह में लगभग एक–तिहाई कविताएं प्रेम कविताएं हैं जो संग्रह में अनमोल मोती की तरह बिखरे पड़े हैं। सभी एक से बढ़कर एक! न सिर्फ दिल को छुने बल्कि उसकी अतल गहराईयों में उतरकर जीवन में प्रेम के प्रति नई सोच पैदा करने तथा नई दृष्टि और समझ विकसित कर नई दिशा देने में भी समर्थ हैं। वह भी बिना लाग–लपेट के सीधे–सीधे आम बोलचाल की भाषा में! मानो यह कवि की नहीं हम सबके भीतर वर्षों से पल रहे प्रेम की सहज अभिव्यक्ति है। सड़क–छाप मजनुओं की तरह प्रेम में एक दूसरे से बिछुड़ने पर रोने–धोने की बजाय एक गंभीर प्रेमी की तरह जीवन की सच्चाईयों को स्वीकारते हुए कवि कहता है–'तुम क्या सोचती हो/तुम्हारे चले जाने से/एकदम से बदल जाएगा सब कुछ/नहीं–नहीं/बदस्तूर जारी रहेगा जीना/रोजमर्रे की बातें खत्म नहीं होंगी/एकदम से खत्म नहीं हो जाएगा/हंसना–बतियाना संग–साथ निभाना/धीरे–धीरे सूखने लगे/तो लगे आत्मा की जड़ें/जीने की आस खत्म नहीं होगी/एक हारी–सी जिद्द तो बची रहेगी/कि नहीं तुम नहीं गई।'

इन पंक्तियों में यह साफ झलकता है कि कवि के प्रेम में कितनी सादगी और गहराई है। कुछ ऐसी ही पंक्तियां 'मुझे अब भी' शीर्षक कविता में देखी जा सकती हैं–'कवि होकर भी कोई क्रांतिकारिता न दिखा पाने पर/कोई रंज नहीं करना था/जिस वक्त को हमने भरपूर जिया था साथ–साथ/उन्हीं से इस वक्त जीने की भरपूर ताकत लेनी थी/मुझे अनायास ही रूठ गई नींद को मनाना था/धूसर होते जा रहे सपनों और भीतर/खोती जा रही रूमानियत को बचाना था/जैसा पहले देखता था चीजों को/ठीक वैसे ही अब भी देखने की आदत डालनी थी/मुझे अब भी तुम्हारे होने के एहसास में/पूरा–पूरा जीना था तुम्हारे बगैर!'

कहा जाता है कि प्रेम पर लिखना हिंसा और हत्या के विरुद्ध खड़ा होना है। वैसे भी वैश्विक परिदृश्य में हिंसा का अगर कुछ बरक्स बन सकता है, तो वह केवल प्रेम ही है। बेशक प्रेम का एक लोक पक्ष भी है। यही प्रेम सत्य, शांति और अहिंसा तक ले जाता है। उसमें भी अगर लयात्मकता से भरी प्रेम कविता हो तो अंदर संगीत की तरह बजने लगती है। एक अनाधुनिक प्रणय निवेदन कुछ ऐसी ही कविता है–'सारा दिन जी–तोड़ खटें/सांझ पहर घर लौंटे तो/हाथों पर हाथ धरें /जीने का बल दें/थोड़ा सुस्ताएं, थोड़ा आराम करें/कभी हारें–टूटें तो/मन में उल्लास भरें/जितना है कम नहीं/मन में यह आस करें/थोड़ा एक दूजे पर/थोड़ा खुद पर/थोड़ा इस जग पर विश्वास करें।' गौर करें इस कविता की लयात्मकता में संगीत तो है ही, साथ ही इसका कैनवास इतना बड़ा है कि घर–परिवार के दाम्पत्य

जीवन से निकल कर आस–पास फैले समाज ही नहीं पूरे देश–दुनिया तक जाता है।

विषय की विविधता के हिसाब से संग्रह की अन्य कविताओं की पड़ताल करें तो घर–परिवार, नाते–रिश्ते, प्रेम और प्रकृति से लेकर बाजार और अपने समय व समाज की तमाम विसंगतियों, गुमनाम और उपेक्षित होती जा रही चीजों के साथ गांव–गिराव से गुम होते जा रहे कई चिर–परिचित पात्रों की पीड़ा और उसके सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व को भी कवि अपनी कविताओं में चित्रित करता है, जिसे 'चुड़ीहारिन' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है–'चुड़ियों में वह केवल कलाइयां नहीं/पूरा गांव पिरोती/बच्चों के लिए उत्सव/और औरतों के लिए/यौवन का संगीत होती है वह/उसके जाने के बाद उसके पसीने का नमक देर तलक महकता गांव की फिजां में/कि गांव की मान–मरयाद में खलल नहीं थी चुड़िहारिन/एक अवसर थी रिश्तों की आवाजाही की/कि उसके आने से कभी–कभी टूट पाती थी गांव भर की सीलन। प्रस्तुत संग्रह में जहां एक ओर चिट्ठियां, एक निर्वासित प्रश्न, सब कुछ खत्म नहीं हुआ, तकिया, नमक, चीजें, आतंक, पानी, तलाश, मीता के लिए, हंसी, वे हाथ जैसी कई छोटी–छोटी मर्मस्पर्शी कविताएं हैं, तो दूसरी तरफ चतुर्भुज स्थान, दस मिनट, मतलब बेमतलब, बहुत दिनों बाद मेरा शहर, मेरे जाने के बाद, यह दोपहर का वक्त और नींद जैसी यादगार और लम्बी कविताएं भी संग्रह की उपलब्धि हैं। न सिर्फ भाषा, भाव, संवेदना के स्तर पर बल्कि अपने काव्य मुहावरों व बिम्बों के साथ–साथ कथ्य और शिल्प की कसावट के स्तर पर भी।

कुल मिलाकर राहुल राजेश के कविता संग्रह 'सिर्फ घास नहीं' से गुजरते हुए हम कह सकते हैं कि कविता के प्राण उक्तियों में बसते हैं न कि सुक्तियों में। और यह बात राहुल राजेश बखूबी जानते हैं। यही कारण है कि वह अपने जीवानुभवों से निकली उक्तियों को सहजता से अभिव्यक्त करते हैं। राहुल कविता लिखते कहते सुक्तिकार बनने से बचते हैं। शब्दों के अनावश्यक प्रयोग से तो बचते ही हैं, बौद्धिक आंतक और चमत्कृत कर देने वाली भाषा–शैली से भी परहेज करते हैं। इनकी कविताओं का लहजा शांत और संयत है। अपनी सधी–सधायी भाषा और छोटे–छोटे वाक्यों में बड़ी–सी बड़ी बातें कह जाने का सामर्थ्य कवि के पास तो है ही, जीवन की आंच में तपे–तपाए अनुभव भी कम नहीं हैं। तभी तो संग्रह की कविताओं में कवि कम कविताएं ज्यादा बोलती हैं। वैसे अन्य कवियों की तरह राहुल राजेश के अंदर बैठा कवि भी अपने आस–पास कई सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियों को झेलता है। यहां तक कि अपने रोजमर्रे की जिन्दगी में उससे लड़ता–भिड़ता भी है लेकिन जब उस पर कुछ लिखने–कहने की बात आती है, तो औरों की तरह नारेबाजी और चुटकुलेबाजी नहीं करता बल्कि जो कुछ भी लिखना कहना होता है, पूरी संजीदगी और गंभीरता से लिखता कहता है। वह भी प्रार्थना की भाषा में कुछ इस तरह, जिसमें निराशा व हताशा के बावजूद पृथ्वी पर मानवता और प्रेम को बचाने की आशा और उम्मीद दिखती है–'बची रहें/घरों में चींटियां/रोशनदानों में घोंसले/बची रहे/बच्चों के बस्ते में स्लेट/दादी के किस्से/बक्सों में बची रहें/पुरानी चिट्ठियां/कोठी में कम से कम/थोड़ा सा धान/बची रहे हम में/प्रेम करने की जीवन भर इच्छा/बची रहें कविताएं/पृथ्वी की चाक पर झुकी/कुम्हार सी।' वह भी जैसे–तैसे नहीं बल्कि इन शर्तों पर–'लौटें हम अपनी जड़ों की ओर/तलाशें बिसराये संबंध। जिये अपना ही लोक, अपनी ही माटी/अपनी ही भाषा/ठानें कि अब और न हो कोई युद्ध/लेकिन लड़े अपने हक के लिए पुरजोर/कि अब और न टूटे/बहुत–बहुत टूट चुका घर/पहचाने अपनी ताकत/कि हमारी रगों में दौड़े लहू, पानी नहीं/हमारे पसीने का नमक/जीवन का कर्जदार हो/ बाजार का नहीं!'

कविता संग्रह : सिर्फ घास नहीं
कवि : राहुल राजेश
प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
मूल्य : 80/–

सम्पर्क
जनमत शोध संस्थान,
पुराना दुमका केवटपाड़ा दुमका–814101
(झारखण्ड) मो.: 09431339804

निकष

कविता की उर्वरता में दिन बनने का क्रम

शैलेन्द्र कुमार शुक्ल

कविता समय की सार्थकता का सार्थक बिम्ब प्रस्तुत करती है। कवि की लोक चेतना इस तथ्य का प्रमाण है। कवि अपने लोक से कितना जुड़ा है, उसमें कितना रचा–बसा है, कविताई की जीवंतता इन्हीं संस्कारों से आती है। जीवन परिवर्तन की जिस आधारशिला पर टिका है, उन परिवर्तनों के बीच सभ्यताओं का सांस्कृतिक होना लोक चेतना की परंपरा की गतिशीलता को दर्शाता है। और यही गतिशीलता अपने सही सरोकारों में प्रगतिशीलता कहलाती है। अरुणाभ सौरभ मैथिल लोक के तरुण कवि हैं। वह हिंदी के अतिरिक्त अपनी मातृभाषा मैथिली में भी लिखते हैं। यह उनके लोकोन्मुख होने का बड़ा प्रमाण है। वह अपनी जमीन से जुड़े हुए कवि हैं, केवल हवा में पचखियां फेंकने वाले कवि नहीं।

उनका हिंदी कविता संग्रह 'दिन बनने के क्रम में' भारतीय ज्ञानपीठ के नवलेखन पुरस्कार से सम्मानित होकर आया। इस संग्रह की कविताएं अरुणाभ को एक अलग पहचान देने में कारगर साबित होती हैं। 'दिन बनने के क्रम में' इसी संग्रह की एक कविता का शीर्षक है, जो अपने में प्रतिनिधि है। यह कविता इस बात पर भी जोर देती है कि वह सिर्फ अपने समय के कवि नहीं, उस परंपरा के कवि हैं जिसका एक समृद्ध सांस्कृतिक लोक है, और इस लोक का सांस्कृतिक होना प्रकृति की समरूपता का सहज वहन करना है। इस कविता को ठीक से समझने के लिए रहीम का एक दोहा देखें –"रहिमन चुप ह्वै बैठिए देखि दिनन को फेर/जब निके दिन आइहैं बनति न लगिहै देर।।"

बुरे समय में चुप होकर बैठना निष्क्रिय होने का पर्याय नहीं है। समय माड़िक नही है तो चुप रहिए, यानी लंबी लड़ाई के लिए ऊर्जावान बनिए। अधजल गगरी की तरह छलकना ठीक नहीं। खुद का मूल्यांकन कीजिए, कमजोरियों को दूर करने का सामर्थ्य जुटाइए। यही है चुप होना जो दिन बनने के क्रम में सार्थक सिद्ध होगा। दिन बनने की शुरुआत कहां से होती है, समय कितना कठिन है, यह इसी कविता में देखिए–'रतजगा कर/काली करतूतों के गवाह तारे/टिमटिमा कर जा चुके हैं/मड़ैया पर कौए को/कुचरने की हिम्मत/नहीं बची थी/न प्रभाती गाने के लिए/चिड़ियों को फुर्सत/सूरज निकल रहा था/मुंह लटका कर/अधूरे मन से।'

यह हमारे कठोर समय की विसंगतियों की विषैली हलचल है, जिसमें हमारा लोक अपने को बचाए रखने के लिए उबडुब कर रहा है। कविता में इन बिंबों का आना कवि की लोक निजता का परिचायक है। मनहूसियत के इस खतरनाक दौर में अपनी स्वाभाविकता को बचाना बहुत जरूरी है और जरूरी है सांस्कृतिक रचनात्मकता को सहेजना भी। लेकिन यह काम आसान भी नहीं। जहां सामंती पूंजीवादी शक्तियां हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, जिनका एक ही लक्ष्य है कि सारे लोकल को निगल कर ग्लोबल के नाम पर एक जैसा कुछ इकट्ठा कर देना। जहां निजता के नाम पर कुछ न हो, स्वाभाविकता के नाम पर कुछ न

बचे, वास्तविकता के नाम पर निस्तेजता का शून्य हो। यह दर्द साधारण दर्द नहीं, और ऐसा कभी भी नहीं हुआ था, हमारी वास्तविकता, स्वाभाविकता और निजता की संगठित संस्कृति यानी लोक संस्कृति पर इतना बड़ा खतरा। यह है हमारे समय की विसंगति। हम दूसरे समयों की अपेक्षा अधिक खतरनाक दौर से गुजर रहे हैं। जब हम अपने समय की बात करते हुए साहित्य का मूल्यांकन करते हैं तो कुछ विद्वानों को आपत्ति होती है, उन्हें अखरता है 'हमारा समय' ही समय है यही सबसे खतरनाक क्यों! उन्हें यह भी समझना चाहिए, आखिर ऐसा क्यों कहा जा रहा है! अरुणाभ की इसी कविता से इसे भी बखूबी जान और समझ सकते हैं–'कचोटित हृदय के/दर्द से निकला रंग/भारी पड़ गया/सभी रंगों पर।'

जहां कठोरता से कोमलता को बचाना है, पारलौकिकता से लौकिकता को, जहां बचना है लोक संस्कृति को सामंती पूंजीवादी ताकतों से, जो साम्राज्यवादी क्रूरता से हाथ मिलाए हुए हैं। इन सारी ताकतों से लड़ना हमें ही है और जब तक हम इस लड़ाई को स्वाभाविकता से लड़ेंगे, हमें ताकत मिलती रहेगी। दिन बनने के क्रम में यह भी जरूरी है–'मनहूसियत से भरी सुबह को/दिन बनाने के एवज में/एक आदमी/खींच लेना चाहता है/इस दृश्य में से सब कुछ/अपने को गढ़ने के लिए/खींच लेना चाहता है/फसल–फसल धरती/नदी–तालाब से पानी/सांस–सांस हवा/लाज–लाज वहम/पहाड़ जैसा जीवन।'

कविता में जीवन की अंतरंग स्थानीयता को बचाए रखना जीवंत निजता के लिए बहुत जरूरी है। और यह भी जरूरी है कि हमारे आस–पास जो प्रकृति और परिवेश है उसमें मैं कितना हूं? वह मेरे अंदर किस रूप में है? कितना जरूरी है जीवन जीने के लिए यह सब! 'एक पहाड़ जैसा जीवन' कवि के कैनवास पर कैसा है इसे भी देखिए–'अपने बगल से गुजरने वाली ट्रेनों को/हरी झंडी दिखा कर विदा करता है/कोई भूखा हो तो उसे देख कर रोता है/रोटी नहीं जुटाता पहाड़/पर खड़ा होना सिखाता है।'

यहां खड़ा होना पहाड़ की स्वाभाविकता है, मनुष्य की मनुजता की परवाह करने के लिए। कवि अपने बाह्य में कितना आंतरिक हो सकता है और फिर कितना आंतरिक में बाह्य, एक रचनाकर की सबसे बड़ी कसौटी है। यही है जो अपने जीवन में समझदार है, जिसे आगे–पीछे देखने की फुर्सत है, उसे वर्तमान भी समझ में आएगा। कौन–सी चीजें सामाजिक और सांस्कृतिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, वह बखूबी जानेगा, इसे कविता के क्षेत्र में ईमानदारी कहा जा सकता है। अरुणाभ की कविताई इसी ईमानदारी की सर्जना है।

अरुणाभ कविता को स्वाभाविक गंभीरता में लेने वाले सार्थक कवि हैं। वह जीवन की संघर्षशील काव्यमय कलात्मकता के हिमायती हैं। वह कविता में जगह देने वाले कवि हैं, संकोच की सीमाओं को तोड़ते हुए। यहां कविता का आंगन इतना बड़ा है कि दीवारें दूर–दूर तक नहीं दिखतीं। 'तुम मेरी कविता में आना' इसी तरह की कविता है–'तुम्हें दुनिया में जब सर उठाकर/जीने की जगह न मिले/और न सर छुपाने की/किसी से बतियाने की न हो फुर्सत/न खुलके बोलने की कोई भाषा/न रहने के लिए एक घर/न घर में एक कोना/न कोने में कोई टेबुल/न टेबुल के नीचे पैर फैलाने भर की जगह/तब तुम मेरी कविता में आना।'

कवि गहरी आत्मीयता में डूब कर अपनी निजता का बयान सार्वजनिक कर रहा है। जब संस्कारों के मैनेजमेंट की तकनीकी व्यवस्था में एक मानक शब्दावली प्रयोग हो रही है, जहां 'महोदय', 'श्रीमान', 'कृपया' और 'आप' की भरमार है। इन सम्मानों ने अपना अर्थ बदल लिया है। इन शब्द–

सम्मानों से एक बदबू आती है, उच्चता के मवाद की एक सड़ी हुई बदबू। ये शब्द लोक–हिन्दी की किसी भाषा में नहीं बोले जाते। यह कुछ लोगों की मानसिकता की मानक सड़ांध है। तब, जब समय एक छलावा बन कर रह गया है। जहां आदर और सम्मान के नाम पर केवल शब्दों के ये खोखले ढांचे कितने बेहूदा लगते हैं। इस कविता में यह जो 'तुम' है अपनी तासीर के साथ आया है 'आप' जैसे बेमतलब के लिए नहीं।

आज भूमंडलीकरण के दौर में स्वाभाविकता का सबसे अधिक ह्रास हुआ है। हर जगह बनावटीपन का जाल बिखरा पड़ा है। जब विचारधाराएं विकृत मानसिकताओं का शिकार बनती जा रही हैं, असली चेहरा कालिख पोते गरीब शहरों के चौराहे पर खड़े हैं, और नक्काल देश के सबसे बड़े शहर में छल–छद्म का अखाद्य खोले हुए हैं। प्रेमचंद की यह बात कितनी अजीब लगती है कि 'साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है।' जब दिल्ली के गलियारों से गुजरे बिना साहित्यकार होने का कोई मतलब नहीं, यानी बीमार देश के साहित्य में दिल्ली एक जरूरी बीमारी है। इस बीमारी ने सिर्फ राजनीति और साहित्य को ही नहीं प्रभावित किया बल्कि मनुष्यता की जड़ों को हिला कर रख दिया। विषैले संकर्मण की यह स्थिति केदारनाथ सिंह की कविता में कितनी स्पष्ट दिखाई देती है–"अगर लौट कर आए भी/तो तुम हमें पहचान नहीं पाओगे/अपनी अन्तिम चिट्ठी में/लिख भेजते हैं दाने।"

केदारनाथ सिंह की यह कविता इस बात का पुख्ता सबूत है कि देसी गंध में गमकता यह कवि लोक की मनुष्यता के लिए आज भी संघर्षशील है, जिसे दिल्ली जैसी खतरनाक बीमारी कभी प्रभावित न कर सकी। अरुणाभ केदार जी की इस विरासत को संभालते हुए अभी नए कवि हैं। वह मिथिला, बनारस और गुवाहाटी से गुजरते हुए अब दिल्ली पहुंचे हैं। लेकिन उनके पास बहुत कुछ है जो एक संवेदनशील कवि को संक्रमित होने से बचाएगा। 'गुवाहाटी में वशिष्ठ आश्रम' एक ऐसी ही महत्वपूर्ण कविता है–'अगर आपकी आंखें/किसी दूसरे की आंखों में/डूबना चाहती हैं/अगर आप की सांसें/किसी और की सांसों में/उतरना चाहती हैं/अगर आप के हाथों में/गिरते को उठाने की ताकत है/तो यह जगह आप को/कुछ और जिंदा कर सकती है।'

अरुणाभ लोक चेतना से मजबूत कवि हैं। उनकी कविताओं में देस का रंग बोलता है। यह रंग हिंदी में भाषिक एकता का नारा बुलंद करने वालों के लिए एक बड़ी सीख देता है। जो एक मानक रूप के आदि हैं, जो भाषा के शुद्धतावादी हैं उन्हें इन कविताओं से सीखना चाहिए और याद करना चाहिए भारतेन्दु का साहित्य काल कि हिंदी का पहला आलोचक यह कह रहा था 'भारतेन्दु युग की हिंदी हिंदी थी' उस समय की हिंदी की एक बड़ी विशेषता यही थी कि उस समय लेखक अपनी स्थानीयता में लोक को जीवित रखे हुए थे। आज की हमारी युवा कविता पीढ़ी जिसमें अरुणाभ का नाम मजबूती से लिया जा सकता है, अपने लोक से गहरे रूप से जुड़ी हुई है। इस संग्रह की कई कविताएं इस तथ्य का प्रमाण पत्र हैं। 'खजन चीरैया' की कुछ पंक्तियां देखिए–'चुग्गा–चुग्गी/अतरस–बतरस/तेल–तलैया/लौआ–लाठी/चंदन–काठी/तोड़ के ला/सोन चिरैया/खजन चिरैया/उड़ जा, चल जा/बहुत दूर जा...।'

इस कविता में एक सहजता है लेकिन बिम्ब की गंभीरता भी इसमें है। इस कविता का एक सामाजिक परिदृश्य भी है जिसकी समाजशास्त्रीयता समझने के लिए इसी संग्रह की एक दूसरी कविता 'उस गांव के नाम' देखी जा सकती है। इस कविता में लोक का जो विघटन हो रहा है उसकी पीड़ा कवि को सालती

है। वह तमाम शब्द जो अपना वजूद खो रहे हैं इस आपाधापी में, कवि ने उनको जगह दी है अपनी कविता में। 'मांछ–मछरी, बारहखड़ी' और 'लुकका' इसी तरह की रचनाएं हैं, जिनमें कवि की स्थानीयता अपनी मनुष्यता के साथ उपस्थित है।

इस संग्रह की एक बहुत ही महत्वपूर्ण कविता है, जो पहले–पहल 'पक्षधर' में छपी थी। यह कविता है 'मधुश्रावणी में लड़कियां।' यह कविता अपनी लौकिक कोमलता के लिए आगे भी जानी जाती रहेगी। इस कविता के शब्द अपनी नाद व्यंजना के साथ आए हैं कि इस तरह एक पूरा–पूरा वितान रच देते हैं, सारे दृश्य अपनी चमक के साथ इतने पवित्र लगते हैं कि इनका दूसरा विकल्प हो ही नहीं सकता। यह कविता सिर्फ कविता नहीं इसमें लोक संस्कारों की चुनरी ओढ़े एक सभ्यता की सबसे कोमल संस्कृति बड़े सलीके से बैठी है। यहां पूरा 'देस' इन पंक्तियों में देशज गंध के साथ मह–मह महकता है। अपनी लोकगंधी जीवन लय में रची–बसी ऐसी कविता हमारी समकालीन पीढ़ी में किसी ने नहीं लिखी, यह बात मैं पूरे होशोहवास में कह रहा हूं। इस कविता का मैं उद्धरण नहीं दूंगा, दूंगा तो पूरी कविता ही लिखनी पड़ेगी।

इस तरह के कोमल मन वाली कविता लिखने वाले कवि को वज्र जैसी कठोर और तेज चोट करने वाली कविता लिखना भी आता है क्योंकि शौर्य का चित्रण वही कर सकता है जिसमें शृंगार की समझ हो। शौर्य और शृंगार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कवि को एक साथ योद्धा और प्रेमी दोनों होना चाहिए पूरे मन से। पूंजीवादी दौर में जब भूमंडलीकरण का अभियान चल रहा हो, जहां पूरा का पूरा लोक दो पैसे का मजूर बनने के लिए मजबूर हो, जहां सारी की सारी लोक कलाएं डिजिटल दुनिया का शिकार हो रही हों, जहां सारा का सारा लोक श्रम दो जून की रोटियों के लिए मोहताज हो, ऐसे समय में एक लोक के कवि का आहत होना कविता में दिखता है। पूंजीवाद की सारी चमक–दमक लोक पर ही निर्भर है, इसका बाह्य सौंदर्य आंतरिक शोषण का प्रशस्ति पत्र है। कुछ चोट करती पंक्तियां देखिए–'अपने टपकते पसीने में सीमेंट–बालू सानकर/उसने कलकत्ता बनाया था/अपने खून से चारकोल सानकर/उसने बनाए थे दिल्ली तक जाने वाले सारे/राष्ट्रीय राजमार्ग/वज्र जैसी हड्डियों की ताकत से/उसने खड़ी की थीं/बंबई की सारी इमारतें/फेफड़े में घुसे जा रहे रुई के रेशे से/खांसते–खांसते दम ले–लेकर/उसने खड़ा किया था सूरत।'

इस तरह हम देखते हैं एक कवि को कितना सजग होना चाहिए, ये पंक्तियां इसकी गवाही देती हैं। जिसने यह सब बनाया है वह शक्तिशाली तो है ही इसमें कोई दो राय नहीं। वह इस बात की ओर भी इशारा कर रहा है सावधान, शोषको हममें दुनिया बदलने की औकात है। हम आशावान हैं। कवि पंछियों के बहाने देश की जनता को संबोधित करता है–'उड़ो पंछियो, दूर तक कि/जीना है जम कर/चहकना है कस कर/उड़ना है गा कर/दुनिया बदलने तक।

कविता संग्रह : दिन बनने के क्रम में
कवि : अरुणाभ सौरभ
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
मूल्य : 100 रुपए

संपर्क
शोध छात्र
महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र)
मो.: 07057467780

R.N.I. No. DELHIN/2012/43119 Postal Registration : DL(S)-17/3455/2014-16

भेजने की तारीख : 28-29 कुल पेज : 84 कवर सहित हेड पोस्ट ऑफिस : लोधी रोड नई दिल्ली-03

कविता पाठ का आयोजन

दिनांक 13 फरवरी 2016 की शाम में रमणिका फाउंडेशन और 'भारतीय दलित लेखक संघ' द्वारा आयोजित मासिक कार्यक्रम (कविता पाठ) का आयोजन किया गया, जिसमें आमंत्रित इला कुमार, ज्योति चावला, उमाशंकर चौधरी, नीलिमा चौहान, मनीषा जैन और भावना बेदी ने अपनी–अपनी कविताओं का पाठ किया। कविता पाठ के बाद टिप्पणी–सत्र हमेशा की तरह रोचक रहा। रमणिका गुप्ता के आवास पर आयोजित इस कविता पाठ की अध्यक्षता रमणिका फाउंडेशन की अध्यक्ष रमणिका गुप्ता और भारतीय दलित लेखक संघ के अध्यक्ष अजय नवारिया ने की। कविता पाठ का संचालन सुमन कुमारी ने किया। अंत में इंतेज़ार हुसैन, निदा फ़ाज़ली, पंकज सिंह, रविंद्र कालिया, रमाशंकर यादव 'विद्रोही', सुधीर तैलंग और प्रकाश जैसे कलाकारों के निधन पर शोक व्यक्त किया गया।

कार्यक्रम में जेएनयू नई दिल्ली के कैम्पस में लगाए गए इस नारे के खिलाफ एक निंदा प्रस्ताव भी पारित किया गया जिसमें 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे लगाए गए और उन तत्वों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की भी मांग की गई जिन्होंने एक साजिश के तहत इस तरह के नारे लगाए।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रमणिका गुप्ता, प्रकाशन का स्थानः 1516, प्रथम तल, वजीर नगर, कोटला मुबारकपुर, नई दिल्ली-03
मुद्रित : रूचिका प्रिंटर्स, बी-25, DSIDC कॉम्पलेक्स, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110032